'शैलवधू' उपन्यास में आपको पहाड़ी कृषक-परिवार का अत्यंत स्वाभाविक और मार्मिक विवरण मिलेगा। पहाड़ी किसान की निरीह किशोर प्रोषिता बहू मधुली अपने घर के बाहर और अन्दर कैसा उपेक्षित और दुखमय जीवन यापन करती है; उसका विदेश में पुलिस की नौकरी करनेवाला पति, जिसके स्वप्न वास्तविकता से टकराकर चूर-चूर हो जाते हैं, उसकी सहायता करने में किस प्रकार असमर्थ ही नहीं, बाधक बन जाता है; खेतों में काम करते, पहाड़ी वनों में भटकते उस मधुली को किन लोभन प्रलोभनों और दुश्चिन्ताओं का शिकार बनना पड़ता है, लेखक के पहाड़ी प्रदेश संबंधी गहरे अध्ययन, पहाड़ी बहू के जीवन-संबंधी अनुभव और निरीक्षण ने इस कृति में तन्मय करने वाली मर्म-स्पर्शिता तथा समाप्त किए बिना न उठनेवाली रोचकता भर दी है।
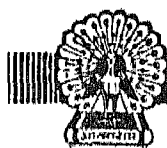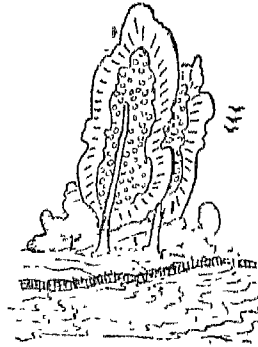
शैलवधू

यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक'

आत्माराम एण्ड संस
काश्मीरी गेट, दिल्ली

अमोठा, गढ़वाल की उन चार ललनाओं को जिन्होंने नयार की पुष्करी में एक साथ कूदकर;

अटाला, टेहरी की उन पाँच ग्राम-वधुओं को जिन्होंने भागीरथी में एक साथ जल-समाधि लेकर;

भैसड़गाँव, अल्मोड़े की उन चार बहू-रानियों को जिन्होंने एक ही रस्सी में लटककर;

अपने जीवन की आहुतियाँ दीं—

और उन अनेक अज्ञात कुमाऊँनी ललनाओं को जो पर्वतीय-ग्रामीण-समाज की पूतनाओं के विरुद्ध संघर्ष करती जीवन-यापन कर रही हैं,

सादर समर्पित

संकेत

'शैलवधू' उपन्यास का जब 'सरिता' में धारावाहिक रूप से प्रकाशन हो रहा था, तो इसके सम्बन्ध में एक पाठिका ने उक्त पत्रिका के सम्पादक को लिखा—"जिस वस्तु को मैं अब तक 'सरिता' में खोजने की कोशिश कर रही थी, वह 'शैल-वधू' में मिली। पहाड़ी होने और पर्वतीय-प्रदेश में रहने के कारण 'शैलवधू' की मार्मिकता समझती हूँ। यद्यपि अब यहाँ अवस्था काफी सुधर चुकी है, फिर भी गाँव की स्त्रियों की दशा में अधिक परिवर्तन नहीं हुआ है। यहाँ अभी न जाने कितनी मधुलियाँ हैं। लेखक ने कहानी में जिस वास्त-विकता का परिचय दिया है, वह सराहनीय है।"

लेखिका का यह पत्र कौसामी नामक स्थान से 'सरिता' में प्रकाशनार्थ भेजा गया था। संभवतः वह स्थान कौसामी नहीं कौसानी रहा होगा, जो अल्मोड़ा और गढ़वाल जिलों की सीमा के निकट एक रमणीक स्थान है। लेखक इस अपरिचित पाठिका के विषय में अनेक मधुर कल्पनाएँ करता

हुआ यह सोच रहा था कि पुस्तक के आद्योपान्त प्रकाशित हो चुकने पर वह उस सहृदय पाठिका को उपन्यास की एक प्रति अवश्य भेंट करेगा; किन्तु कुछ ही मास के उपरान्त उसे 'अमृत-बाजार पत्रिका' में कौसानी से दो ही तीन मील दूर घटी एक दुर्घटना का समाचार पढ़ने को मिला कि सोमेश्वर घाटी की कुछ ग्राम-वधुओं ने नदी में एक साथ कूद-कर आत्महत्या कर ली। उनमें से केवल एक प्राण न गँवा सकी और अपने दुःखी जीवन की कथा सुनाने के लिए बचा ली गई। बाद में लेखक को यह भी ज्ञात हुआ कि वह सहृदय पाठिका भी इस संसार में नहीं रही।

देहरादून से नेपाल तक समूचे पहाड़ी प्रदेश में अनेक नदी, नद और सरोवर ऐसी दुर्घटनाओं के साक्षी हैं। वास्तव में पहाड़ों की उन रमणीक द्रोणियों में बसे गाँवों में कितनी ही मधुलियाँ पिस रही हैं।

इस उपन्यास को लिखने की प्रेरणा भी टेहरी-गढ़वाल जिले के 'अताला' नामक स्थान में हुई पहाड़ी कन्याओं की दो सामूहिक आत्म-हत्याओं के समाचारों से मिली थी। वैसे इस कथानक के सभी पात्र और सभी स्थान काल्पनिक हैं। किसी मृत अथवा जीवित व्यक्ति से उनका तनिक भी सम्बन्ध नहीं है।

शैलवधू

एक

वैसे तो वर्ष में एक बार जिले के प्रत्येक थाने का निरीक्षण करना जिले के प्रधान पुलिस अधिकारी के लिए आवश्यक था, लेकिन कच्ची तराई में बसे सुजौली के दुर्गम थाने में जिला कमिश्नर तीसरे वर्ष पहुँच पाए। एक रात भी इस थाने में काटकर दूसरे दिन बुखार से बच निकलना बड़ा सौभाग्य समझा जाता था। केवल जाड़े के दिनों में ही कुछ सप्ताह के लिए मच्छरों का प्रकोप कम होता था। तब हरे-भरे घने जंगल खूब सुहावने लगते थे। वास्तव में अंग्रेज अधिकारियों ने बड़े दिन के शिकार का पुलिस बन्दोबस्त करने के लिए ही इस उजाड़ स्थान में थाना बनवाकर थारू, बोकसा और हुंगरू जैसी बनजातियों को दूर दूर से बुलाकर यहाँ बसाया था। चवी, राक्षी और दारू[1] के निरन्तर उपयोग के कारण इन लोगों

१. शराब विशेष।

पर मलेरिया का विशेप असर न पड़ता था।

पुलिस कमिश्नर थाने का मुआयना करके बड़े प्रसन्न हुए। थाने का अहाता बड़ा साफ था। व्यायामशाला के दोनों ओर सुन्दर फुलवारी बनी थी और पीछे की ओर सब्जियों की क्यारियाँ। यही स्वच्छता करीने से सजाए गए थाने के कागजों में भी प्रतिलक्षित होती थी। रजिस्टर मोती जैसे सुन्दर अक्षरों में लिखे थे। ढूँढकर भी कहीं कोई त्रुटि उन्हें नहीं मिली। नेपाल की सीमा पर बसे इस इलाके में डाकुओं की वारदातें कम न होती थीं, लेकिन साल भर की सब चोरियों का पता लग चुका था। थानेदार की कर्मण्यता इसी बात से प्रकट हो जाती थी कि धारा १०६[1] में पर्याप्त व्यक्ति पकड़े गए थे।

कमिश्नर ने जल्दी-जल्दी अपना मुआयना लिपिबद्ध किया और उससे छुट्टी पाकर मलेरिया से बच भागने के अभिप्राय से जाते-जाते थानेदार से कहा—"मैं तुम्हारे काम से बहुत प्रसन्न हूँ। तुम्हें जल्दी बड़ा थाना मिलेगा। कितने दिन से हो यहाँ ?"

"छः वर्ष से, हुजूर," अटेंशन के निर्धारित संकेत में निश्चेष्ट खड़ा थानेदार बोला।

"छः वर्ष !" पुलिस कमिश्नर ने साश्चर्य कहा—"यह कैसे ? मैंने तो अभी-अभी थाने के कागजों में एक हुक्म देखा कि इस थाने में कोई भी पुलिस कर्मचारी एक वर्ष से अधिक न रखा जाए।"

"जी साहब," थानेदार प्रेमबल्लभ ने परीक्षार्थी की भाँति उत्तर दिया, "एक वर्ष बाद मेरी भी बदली हो गई थी, लेकिन रिलीव[2] नहीं हुआ। आनेवाले थानेदार बराबर छुट्टी लेते रहे। फिर उनकी भी दूसरे थाने को बदली हो गई। एक और साहब आए। वह चार्ज

१. आवारागर्दी। २. कार्यमुक्त।

लेते ही बीमार होकर छुट्टी पर चले गए। ऐसे ही कई बार तबादले के हुक्म आए, लेकिन यहाँ कोई काम करने को राजी नहीं हुआ।"

"अच्छा !" कमिश्नर ने इस कर्तव्यनिष्ठ थानेदार के प्रति और भी उदार होकर अंग्रेजी में कहा—"इस बार मैं तुम्हें एक सप्ताह के अन्दर कार्यमुक्त करा दूँगा।" फिर मन-ही-मन यह सोचकर कि किसी पड़ोस के थानेदार को प्रेमबल्लभ को कार्यमुक्त करने के लिए इस थाने का अतिरिक्त कार्य सौंपना ठीक होगा, पूछा—"जब कभी तुम छुट्टी पर जाते हो तो कौन काम करता है ?"

उत्तर मिला—"अभी तक तो छुट्टी नहीं ली।"

"छुट्टी नहीं ली ?" अब तो पुलिस कमिश्नर ने थानेदार की पीठ ठोंककर कहा—"थानेदार, छः साल में इस सड़ियल थाने में एक दिन की भी छुट्टी तुमने नहीं ली ?"

"नहीं, साहब," प्रेमबल्लभ उसी प्रकार निर्विकार भाव से बोला।

तनकर खड़े हुए उस नौजवान के हृष्टपुष्ट शरीर, चौड़े माथे और गौर वर्ण चेहरे पर सुडौल नासिका और चमकती हुई निष्कपट आँखों से अधिकारी ने यह अनुमान लगाया कि वह बड़े संयम से इस थाने में रहकर अब तक मलेरिया से बच पाया होगा।

इस प्रकार अपनी पैनी दृष्टि से मानो उसे तौलकर उसका नया ही मूल्यांकन करके पुलिस अधिकारी ने कहा—"अपने इस व्यवहार से तुमने पुलिस विभाग के लिए एक नया आदर्श प्रस्तुत कर दिया है। तुम कहाँ के रहनेवाले हो ?"

"मैं, साहब, कर्नाली की पहाड़ियों का निवासी हूँ ?"

इस उत्तर के सुनते ही उन्हें पुलिस विभाग के संचालक के उस पत्र का ध्यान हो आया जिसमें सीमांत पर्वत प्रदेश में काम करने के

लिए नए पुलिस दल की रचना का उल्लेख था और जिले के पुलिस अफसरों से योग्य पहाड़ी पुलिस कर्मचारियों के नाम चुनकर भेजने को कहा गया था। प्रेमबल्लभ से अधिक योग्य, निष्कपट और कर्त्तव्य-निष्ठ व्यक्ति उस दल के लिए जिले भर में कोई नहीं—यह बात तत्काल अधिकारी के मन में निश्चित हो गई।

"मैं तुम्हें पहाड़ी इलाके में ही पदोन्नति पर भेजूँगा।" यह कह कर मन ही मन अपने इस निर्णय पर प्रसन्न हो पुलिस कमिश्नर घोड़े पर सवार हो गए। प्रेमबल्लभ के प्रत्युत्तर, धन्यवाद अथवा अभिवादन की अधिकारी ने प्रतीक्षा न की और मच्छरों के भय से अपना घोड़ा सरपट भगा दिया।

प्रेमबल्लभ उस अप्रत्याशित आदेश को सुनकर किंचित् भी प्रसन्न न हुआ। वह पहाड़ की ओर जाना ही नहीं चाहता था। उसने तो गत छः वर्ष से अपने पिता को एक पत्र भी नहीं लिखा। लिखे भी कैसे—उन्हें तो केवल रुपए चाहिएँ। रुपए वह भेज नहीं पाता। अपना बाल्यकाल, पहाड़ी गाँव का वह जीवन, कलहग्रस्त परिवार का वह अशांत वातावरण, विमाता का दुर्व्यवहार, घर से बार-बार भाग जानेवाली पत्नी का वह आचरण—उसी से बचकर तो वह इतनी दूर शांतिमय जीवन बिता रहा था। वह मनाने लगा कि इस बार भी भगवान करे कि कोई थानेदार उससे चार्ज लेने न आए और थाने का वह सरकारी मकान, शांति का साम्राज्य उसके हाथों से न छिने। उसे आशा थी कि जो हुक्म छः बार पहले भी होकर टल गया, अब सातवीं बार भी अवश्य टलेगा। जिस क्षुद्र एनोफिलीज के भय से जिले के सर्वोच्च पुलिस अधिकारी थाने से घंटे भर में भाग खड़े हुए, उसमें पूरे तीन सौ पैंसठ दिन बिताने कौन थानेदार आएगा!

दो

कर्नालि की घाटी पर्वत प्रदेश की सबसे उपजाऊ घाटियों में से थी। उसी घाटी में प्रेमबल्लभ के पिता जयदत्त रहते थे। नदी के किनारे दोनों ओर मील भर चौड़ी समतल भूमि थी, जिसमें सिंचाई होती थी और खूब अच्छा धान पैदा होता था। उन खेतों के उपरान्त दोनों ओर पहाड़ थे। पहाड़ों के पार्श्व पर आधी ऊँचाई तक खोद-खोदकर बनाए सीढ़ी के आकार के खेतों में कोदों, सवाँ, गहत और भटमास की खेती होती थी। इन्हीं खेतों के पीछे गाँव बसा था। गाँव के पीछे बाँज और बुरूंस का पुराना घना जंगल अब कट चुका था और उन्नतोत्तर पर्वत के नंगे उजाड़ से दीखने वाले भूभाग पशुओं के चरागाह का काम देते थे। इस गोचर भूमि से भी आगे पर्वत-श्रेणियों पर सरकारी वन-विभाग के देवदार और सनोवर के सुरक्षित वन थे। इन से भी पीछे उत्तरपूर्व के आधे क्षितिज पर श्वेत हिमालय की

हिम-श्रेणियाँ कतार बांधे खड़ी दीखती थीं। इस यवनिका पर सूर्य की किरणें प्रतिक्षण रंगबिरंगी चित्रकारी किया करती थीं। कभी बादल घुमड़-घुमड़कर उस क्रीड़ास्थल को अपने शरीर से ढंक देते थे, तो कभी चाँद और तारे उस शीतल उज्ज्वलता में अपने सैंकड़ों प्रतिबिंब देखा करते थे। घाटी की गोद में गोलमटोल शिलाओं से खेलती कर्नाली नदी का गुँजन हवा में थिरकता पर्वत पार्श्व पर प्रतिक्षण साँय-साँय करता था। वे समतल खेत, वे सीढ़ियाँ, लिपे-पुते मकान, पशुओं के भूरे चरागाह, नीले जंगल—सब मिलकर घाटी को रंग-बिरंगी नाट्यस्थली-सा आकर्षक बनाते थे।

प्रेमबल्लभ के पिता जयदत्त किसान भी थे और गाँव के स्कूल के अध्यापक भी। अध्यापकी से तेंतीस रुपये मासिक मिलते थे जो दस जनों के परिवार के लिए पर्याप्त न थे। घाटी में खेती का कार्य सुगम न था। प्रत्येक कुटुम्ब के बच्चों तक को होश संभालते ही खेतों में जुट जाना पड़ता था। प्रेमबल्लभ को भी पुस्तकों से छुट्टी पाकर कभी जंगल से लकड़ी लाने और कभी खेतों में काम करने जाना पड़ता था। प्रेमबल्लभ परिवार के आठ भाई-बहनों में सबसे बड़ा था। वैसे तो उसकी माँ बचपन में ही मर गई थी और शेष चार भाई और तीन बहनें उसकी विमाता की सन्तानें थीं, किन्तु पिता के आदेशानुसार वह अपनी विमाता को कैंजा[1] न कहकर इजा[2] ही कहकर पुकारता था, यद्यपि उसे वैसा ही स्नेहिल व्यवहार अपनी विमाता से न मिलता था। घर में और बच्चों को काम में लगे और प्रेमबल्लभ को पुस्तकों में जुटे देखकर उसकी विमाता बड़ी कुढ़ती

---

१. विमाता। २. माता।

थी। कई बार उसे आलसी, कामचोर, मुफ्तखोर आदि उपाधियाँ भी मिल चुकी थीं। पति के हस्तक्षेप करने पर किसी प्रकार प्रेमबल्लभ की पढ़ाई जारी रही। उस वर्ष वह नवीं कक्षा में पढ़ रहा था और पढ़ाई में पर्याप्त समय की आवश्यकता थी। उसे यह समय तभी मिला सका जब उसकी विमाता ने उसके बदले में काम करने के लिए एक और व्यक्ति परिवार में ले आने के लिये अपने पति को बाध्य कर दिया। नवागन्तुक सदस्य का नाम था मधुली। वह ग्यारह वर्ष की एक लड़की थी, जिसका विवाह प्रेमबल्लभ से हुआ था। उस के पिता भी जयदत्त की ही भाँति एक दूसरे गाँव में अध्यापक और किसान थे।

कर्नाली की उस घाटी में बहुओं का जीवन, चाहे वे ब्राह्मणों के घरों की हों, चाहे ठाकुरों के, बड़ा ही दुःखमय था। नववधू से परिवार की बिना वेतन की दासी का सा काम लिया जाता था। सुबह होते ही, और कभी-कभी तो दो घड़ी रात रहे ही, उसे उठकर गाँव की और बहुओं के साथ आठ मील दूर पहाड़ की चोटी पर जाकर घास, लकड़ी अथवा खेतों की खाद के लिए सोतर[1] लानी पड़ती थीं। नौ-दस बजे लौटकर नदी के किनारे जाकर घर के उपभोग के लिए पानी के घड़े भरने होते थे। रात की बची कोई बासी रोटी नमक के साथ खाकर, अथवा कभी भूखे ही फिर वह खेतों में काम करने जाती थी। दोपहर ढले सबके खा चुकने पर वह फिर खाली रसोई में जाकर देखती कि दाल तो सब बच्चों ने खा ली है। सूखा भात पानी और नमक के साथ ही गले के नीचे उतारकर जल्दी-जल्दी

---

१. बांज या चीड़ की गिरी पत्तियाँ।

सारे परिवार के जूठे बर्तनों को मलकर, चौका पोतकर वह फिर खेतों में चली जाती और दिन डूबे लौटती।

पर्वतीय ग्रामवधू का सबसे कठिन और नीरस कार्य संध्या समय से आरंभ होता। रात के अंधेरे में उसका एकमात्र साथी होता छिलुकों[1] का प्रकाश। सूप भर धान लेकर आँगन के किनारे ऊखल में उसे अकेले ही इन्हें कूटना पड़ता। धान कूटकर, उन्हें पछोड़कर आधी रात गए वह ऊखल से उठ पाती। फिर ठंडी रोटियाँ खाकर, सबके सो जाने पर ऊँघते-ऊँघते सारे परिवार के जूठे बर्तन मलती, और उसके उपरांत भी यदि वह सास के पाँव दबाए बिना ही सो जाती तो अगले दो दिन तक सास के ताने उसे सुनने पड़ते।

विवाहित प्रेमबल्लभ अपने को अविवाहित प्रेमबल्लभ से तनिक भी भिन्न न पाता। उसके सातों भाई-बहन उसकी पत्नी से खूब काम लेते। लेकिन बहू भी जी लगाकर काम करती। सास को तनिक भी शिकायत का अवसर न देती। उसे खेत में जाती देख छोटे बच्चे कंधे पर सवार होकर खेत की सैर करने की जिद करते। उसे बर्तन मलता देख तीनों स्कूल जाने वाले बालक अपनी अपनी पाटियाँ उससे धुला लेते। नदी की ओर पानी लाने को जाते देख सास गोद के बच्चे के टट्टी किए कपड़ों के ढेर को भी साफ करने उसे दे देती, केवल उसका पति प्रेमबल्लभ ही उससे कुछ काम न लेता—यहाँ तक कि उन दोनों में महीनों तक बातचीत भी न होती।

---

१. चीड़ की पतली लकड़ियों की लुकाई।

तीन

प्रेमबल्लभ बहुधा अपने पिता के पास रहता था। सुबह उन्हीं के साथ उठकर धोती-लोटा लेकर नदी किनारे चला जाता था। नहा-धोकर वहीं मन्दिर में सन्ध्या करके और जल चढ़ाकर घर आता और फिर अपनी पढ़ाई में जुट जाता था। रात को, जब ऊखल के बजने की आवाज पूरे जोर पर होती, वह मिट्टी के तेल की ढिबरी को बुझाकर पुस्तक बन्द करके सो जाता। घर की बहू के विषय में सोचना भी उसे अपने अधिकार की बात न लगती, क्योंकि सारे गाँव में यही प्रथा थी। बहुएँ सभी घरों में इसी प्रकार उपेक्षित सी काम करती थीं। एक वर्ष इसी प्रकार बीत गया। एक दिन अचानक ही प्रेमबल्लभ की मधुली से मुठभेड़ हो गई। जाड़े का दिन था। प्रातःकाल नदी में स्नान करने के उपरांत एक हाथ में गीली धोती, दूसरे हाथ में भरा लोटा लिए जाड़े के मारे किटकिटाते दाँतों

से श्लोकों का पाठ करते हुए प्रेमबल्लभ अपने घर की ओर लौट रहा था और मधुली घर से जंगल की ओर जाने को निकली थी। पत्नी की दृष्टि उस ओर न थी। प्रेमवल्लभ ने देखा उसने काली धारी का लहंगा पहना है। बूटेदार पिछौड़ा[1] आधा कमर पर कस कर बाँधा है और आधे से कान और सिर ढंके हैं। कमर पर दरांती तिरछी खोंसी हुई है। कन्धे पर सूखे पत्ते रखने का खारा[2] है। बच्चों की-सी अबोध मुद्रा है। गोल-गोल खूब साफ रंग के चेहरे पर अत्यधिक छोटा मुख-विवर है। कपोल अत्यधिक शीत के कारण ऐसे दीखते हैं मानों खूब पके हुए सेब पर पपड़ी पड़ गई हो। हाथों पर भी ऐसी ही महीन-महीन बैंगनी पपड़ियाँ हैं। सिमटे हुए लहंगे के नीचे पाँवों की पीली पिंडलियाँ भी पके हुए कार्त्तिकी खीरे की-सी भूरी धारियों से भरी हैं, पाँवों में वे फटी धारियाँ मोटी-मोटी और काली-काली हैं। स्थान-स्थान पर उनसे रक्त निकलकर फिर जम गया है। उन फटे पाँवों पर उस समय भी कहीं-कहीं लाल-लाल बूँदें चमक रही थीं। एक झलक में यह सब देखकर प्रेमबल्लभ ने आँखें नीची कर लीं और पत्नी के निकट आते ही वह अपने मार्ग से तनिक हट गया।

मधुली ने भी उसकी ओर देखा। क्षण भर, मानो वह कोई परदेशी हो, उसकी ओर निर्निमेष देख कर, फिर तत्काल ही उसे पहचानकर उसने कन्धे पर रखे 'खारे' को खींचकर अपना मुँह ढंक लिया। दोनों रास्ते से हटकर झटपट विपरीत दिशाओं की ओर चल दिए। कोई कुछ न बोला।

---

१. चूंदरी। २. रस्सियों का जाल।

घर लौटकर अपने ठिठुरे हाथों और पाँवों को सिगड़ी[1] के निकट तपाते हुए प्रेमबल्लभ बार-बार अपने पाँवों की ओर देख रहा था। वह बार-बार अपने जूतों के विषय में सोचता। स्कूल जाते समय ही पीले कपड़े के जूते आले में से निकालकर वह पहनता है और फिर स्कूल से आते ही उन्हें पोंछ-पांछ कर फिर आले में रख देता है। छोटे बच्चों के पास तो जूते हैं ही नहीं। पाला पड़ते ही सब स्कूलों में जाड़े की छुट्टियाँ हो जाती हैं। जूतों की आवश्यकता नहीं रह जाती। क्या तब वह अपने जूते मधुली को दे सकता है? अधुरिया पहाड़ पर, जहाँ उसे नित्य प्रातःकाल जाना होता है कड़ाके का तुषार रहता है। पाँवों के नीचे खांखर[2] कड़कड़ाते हैं। वह तो खूब धूप निकले स्कूल जाता है, तब तक तुषार और खाँखर पिघल जाते हैं और वह बिना जूते के भी स्कूल जा सकता है। तब वह अपने जूते मधुली को दे देगा।

उस दिन अपनी सहनशक्ति का अन्दाज लगाने प्रेमबल्लभ नंगे पाँव स्कूल गया। उसके इस त्याग की ओर किसी ने ध्यान नहीं दिया। अगले दिन पिता से उसे जल्दी स्कूल की ओर जाने की आज्ञा मिली, क्योंकि मार्ग में हरवाहे के गाँव जाकर उसे खेत जोतने आने के लिए कहना था। पिता के सामने तैयार होकर जाना पड़ा, इसलिए उसने इच्छा न होते हुए भी जूते पहन लिए। लेकिन उस दिन के उपरान्त फिर उसने जूते पहनना लगभग छोड़ ही दिया। उसके पाँव भी फटने लगे लेकिन नहाते समय गीली धोती से वह कई

---

१. अंगीठी। २. कांच के आकार का हिम जिससे जाड़े में भूतल मंडित रहता है।

बार पाँवों को रगड़कर साफ कर लेता और घर लौटते ही उन्हें सिगड़ी में तपा लेता।

अपनी पत्नी से उसकी भेंट फिर बहुत दिनों तक नहीं हुई। कई बार वह बहुत तड़के उठा। स्नान करके जल्दी-जल्दी घर लौटा, लेकिन उसके लौटने से पहले ही वह जंगल चली जाती थी। दो-एक बार रात तक, जब तक कि बाहर छिलुके[1] का उजाला दीख रहा था और जूठे बर्तनों पर मधुली के हाथ के कड़े बज रहे थे, वह जागता रहा, फिर किसी बहाने उठकर वह बाहर भी गया, लेकिन उससे बात करने की उसकी हिम्मत न पड़ी। उसे वह किस नाम से पुकारे यह भी एक समस्या थी। नाम तो उसका मधुली था, लेकिन अपनी पत्नी को उसके नाम से पुकारने की प्रथा उस पर्वतीय देहात में न थी। उसके पिता स्वयं उसकी माँ को कभी उसके नाम से नहीं, प्रेमबल्लभ की माँ कहकर पुकारते थे। गाँव के और सयाने लोग भी इसी नाम से उसकी माँ को पुकारते थे। उसके भाई-बहन मधुली को भावज कहते थे, माँ-बाप बहू कहते थे, लेकिन उसके पास कोई नाम ऐसा न था जिससे वह उसे पुकार सके।

कई बार उससे बातचीत करने का प्रयत्न करने पर भी प्रेमबल्लभ अपने जूतों की बात मधुली से न कह सका। उसके पिता को ज्ञात हो गया कि उनका बेटा आजकल जूतों का प्रयोग बड़ी मितव्ययता से कर रहा है, लेकिन इसका कारण नए जूते खरीदने के लिए दीन परिवार में धन के अभाव का ज्ञान ही समझकर पुत्र की उत्तरोत्तर बढ़ती समझदारी से वह मन-ही-मन प्रसन्न हो रहे थे।

---

१. चीड़ की तेलिया लकड़ियों की मशाल।

फिर एक दिन प्रेमबल्लभ की भेंट मधुली से हो गई। संध्या समय बगल में बस्ता दबाए जल्दी-जल्दी गाँव के नाले के किनारे उस तंग कंकरीले रास्ते से वह स्कूल से लौटकर घर जा रहा था कि हलका सा शब्द हुआ और एक काली छाया सी आँखों के सामने से गुजरी। मुड़कर देखा तो मधुली का वही काली धारी का फटा लहंगा और बूटेदार पिछौड़ा। मार्ग के किनारे दो बड़े-बड़े गोलाकार पत्थरों के बीच वह दुबक रही थी। हाथ की दरांती को पयोने पत्थर पर घिस कर तेज करने के लिए अथवा जान-बूझकर उसी के लिए रुकी थी। प्रेमबल्लभ ऐसे खुले स्थान में उससे बात कैसे कर सकता था! जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाता हुआ आगे बढ़ने लगा।

"जरा सुनो तो," मधुली ने कहा। स्वर यद्यपि बहुत धीमा था किन्तु था, बहुत स्पष्ट और बच्चों का-सा तोतला।

प्रेमबल्लभ रुक गया, लेकिन मुड़ा नहीं। कन्धे के ऊपर गर्दन घुमाकर उसने वक्ता की ओर देख लिया। उसकी साँस तेज चलने लगी मानो चोरी करने जा रहा हो। डूबते सूर्य की आभा उस नन्ही गोल आकृति पर पड़ रही थी। गले में चाँदी की बड़ी सी हँसली, कानों में चाँदी की बालियाँ और नाक पर छोटी सी सोने की लौंग थी। पतले-पतले हाथ दरांती के बेंट से अधिक मोटे न थे। उसका डील-डौल तीसरी कक्षा में पढ़ने वाले लड़कों का-सा था, जिन्हें प्रेमबल्लभ अपने से बहुत क्षुद्र और अपने साथ खेलने के अयोग्य समझता था। उसकी आकृति बहुत सुन्दर थी। आँखों में एक अनोखी ही चमक थी। शिशु से कोमल कपोलों पर खड़ी और तिरछी उन बैंगनी रेखाओं ने जाल से बुन दिए थे मानो वह पदम[1] के

१. चैरी।

पेड़ की लाल छाल हो। प्रति दिन ठिठुरते जाड़े में काम करने के कारण छोटी कक्षाओं में पढ़ने वाले बच्चों के गाल ऐसे ही तो फटे रहते हैं। प्रेमबल्लभ को आज ज्ञात हुआ कि उसकी पत्नी इतनी छोटी है। उस दिन सुबह के झुटपुटे अंधियारे में उसने उसे भली भाँति देखा ही न था।

पयोले गोल पत्थर पर लोहे की रगड़ से नीला चिन्ह बन गया था। आँखें नीची किए उसी पत्थर पर दरांती की धार को तेज करते हुए उसने कहा—"कल तुम्हें छुट्टी होगी, मुझे मैत[1] पठवा दो।"

प्रेमबल्लभ ने अपने चारों ओर, नाले के उस पार और फिर पहाड़ की आधी ऊँचाई पर बसे गाँव की ओर देखकर भली-भाँति निश्चय कर लिया कि कहीं कोई उनकी ओर देख तो नहीं रहा है। आस-पास, दूर जहाँ तक दृष्टि जाती थी, कोई न था। फिर धीरे-से वक्ता के प्रश्न की पूरी अवहेलना करके उसके पाँवों की ओर दृष्टि डाली। वह पत्थरों की ओट में खड़ी थी। उसके पाँव न दीखते थे। यदि दीखते तो प्रेमबल्लभ को तत्काल उससे घृणा हो जाती। पाँवों के तलुओं पर बड़ी-बड़ी बिवाइयाँ तो थीं ही, ऊपर भी चमड़ा स्थान-स्थान पर गहरी और काली रक्त से सनी धारियों का जाल बना हुआ था, और ऐसा खुरदरा हो गया था मानो गिरगिट की खाल हो।

प्रेमबल्लभ उस समय भी जूते नहीं पहने था, अन्यथा शायद वह उन्हें खोलकर मधुली से उन्हें पहन लेने का आग्रह करता। वह किस प्रकार उन जूतों के विषय में मधुली से कहे, यही बात मन में

१. मायके।

सोच रहा था, तभी वह बोली—'तो कल मुझे पहुँचा दोगे न मैत ? फिर काला मास आ जाता है।"

उसके पतले से होंठों और बच्चों के से छोटे-छोटे उजले दाँतों की ही ओर प्रेमबल्लभ का ध्यान था। इतनी छोटी लड़की को शायद उसके जूते फिट भी न आएँ। यह जानकर उसे बड़ी निराशा हुई। उसने क्या कहा, यह तो उसने सुना ही नहीं। अपनी ही बात कहने के लिए वह आतुर था। फिर चंचल दृष्टि से एक बार अपने चारों ओर देख उसने कहा—"तुझे तुषार में लड़के जंगल जाना पड़ता है। कल से मेरे जूते पहनकर जाना। खिड़की के पास पूर्व की ओर के आले में रखे हैं।"

"छि! छि!" मधुली ने कहा—"मैं जूते क्यों पहनूंगी!"

"क्यों ?" प्रेमबल्लभ ने सयाने विद्यार्थी की भाँति कहा—"उससे पाँव नहीं फटेंगे।"

"गाँव की सभी बहुएँ जंगल जाती हैं," मधुली बोली—"कोई भी तो जूता पहनकर नहीं जाती। सभी के पांव फटे हैं।"

प्रेमबल्लभ अपनी मूर्खता पर खीझ गया। गांव में कोई भी लड़की जूते नहीं पहनती। यह बात उसने सोची ही न थी।

"मैं जो कुछ कह रही हूँ, वह तो तुम सुनते ही नहीं," मधुली ने फिर कहा—"कल मैं मैत जाना चाहती हूँ। परसों संक्रांति है, फिर काला महीना लग जाएगा। अगर कल न गई तो सारा जाड़ा यहीं काटना पड़ेगा।"

"पिताजी से कहना," प्रेमबल्लभ ने कहा।

"उनसे कहा था," मधुली ने सिसककर कहा—"सास से भी कहा था।"

प्रेमबल्लभ ने पूछा—"क्या कहा उन्होंने ?"

टप-टप आँसुओं की धार पयोने पत्थर की लोहे की रगड़ से बनी नीली धारी पर गिर पड़ी। पतले से होंठ काँप उठे।

नीले में आते हुए गायों के झुंड के पीछे ग्वालों की आवाज आ रही थी।

मधुली उन गोल पत्थरों के बीच दुबक गई और सिसकते हुए, बोली—"सास-ससुर कोई भी मुझे पहुँचाने को तैयार नहीं है। कहते हैं, हमारे घर का इतना सारा काम कौन करेगा !"

प्रेमबल्लभ अब जाने को तैयार हो गया। ग्वालों की आवाज निकट आती जा रही थी।

"अच्छा, मैं कहूँगा।"—कहकर प्रेमबल्लभ तेज कदम रखता हुआ आगे बढ़ने लगा। लेकिन तभी उसे झटके के साथ रुक जाना पड़ा।

मधुली ने अपने एक हाथ से उसके पाजामे का छोर पकड़ लिया था। वह बोली—"तुम भी रोज चार मील स्कूल जाते हो और चार मील पैदल वापस आते हो। सुना है, वहाँ कसरत भी करनी पड़ती है, मास्टर लोग मारते भी हैं। लेकिन छः दिन के बाद तुम्हें एक इतवार भी तो मिलता है। तीज-त्योहार को भी छुट्टी मिल जाती है। कभी मुझे भी तो छुट्टी होनी चाहिए। कल रघुली भी मैत जा रही है, शिवराम की बहू परसों ही चली गई। माधव की घरवाली अभी-अभी विदा हुई है। मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है ? सब की तरह मन लगाकर काम कर रही हूँ। तुम मुझे छुट्टी दिला दो।"

दरांती की नोक से पत्थरों के बीच उगे घास के पौधों को उखाड़ते हुए उन्हें आँसुओं से भिगोती हुई मधुली फिर सिसक-सिसककर रोने लगी। प्रेमबल्लभ के पाजामे का छोर अब छूट गया था। वह बिना

पीछे की ओर देखे लम्बे डग भरता हुआ गेहूँ के खेतों के बीचवाले छोटे रास्ते से हाँफता हुआ शीघ्र अपने घर पहुँच गया। मन-ही-मन वह मधुली की बच्चों की-सी बातों को सोचता जा रहा था कि विद्यार्थियों का स्कूल में कसरत करना उसको ऐसा ही कष्टमय जान पड़ता है जैसा कि जंगल से घास लाना।

अपनी पत्नी से उसने कह तो दिया था कि वह उसे मायके भिजवाने के विषय में कहेगा, लेकिन इस सम्बंध में अपनी माता या पिता से बात करने का उसे साहस ही नहीं हुआ।

रात को 'भारतीय अर्थशास्त्र' पढ़ते समय मधुली की कही हुई बात उसे बार-बार याद आ रही थी। 'श्रमिक और उद्योगपति' अध्याय तो वह एक साँस में पढ़ गया। श्रमिकों के काम के घंटों का प्रसंग आज उसे बड़ा ही प्रिय लगा। वह सोच रहा था : प्रति सप्ताह मजदूरों से पचास घंटे से अधिक काम नहीं लिया जाता। यहाँ देहात में बहुएँ ऐसी मजदूरनियाँ हैं कि प्रतिदिन बीस-बीस घंटे काम करती हैं। वेतन के नाम पर उन्हें कौड़ी नहीं मिलती। घर का सबसे खराब खाना उन्हें मिलता है। मिलों में केवल वयस्क श्रमिकों से ही काम लिया जाता है। गाँव में क्या मजदूरों के लिए वे कानून लागू नहीं हो सकते ?

पुस्तक बन्द करके वह चुपचाप मिट्टी के तेल की ढिबरी की ओर ताकता रहा। मधुली जब से इस घर में आई है, उसे एक दिन की भी छुट्टी नहीं मिली। दिन, तो क्या उसे एक मिनट का भी विश्राम नहीं मिलता। मधुली ही क्यों, गाँव की किसी भी नारी को तबतक विश्राम करने को नहीं मिलता जब तक कि वह स्वयं सास का पद नहीं पा जाती।

बाहर खलियान के किनारे काठ का मूसल धमधम धमधम आवाज कर रहा था। पत्थरों पर रखा हुआ जलते छिलुकों का प्रकाश ठंडी वायु के कारण क्षण-क्षण में काँप उठता था। दोनों हाथों से उस भारी मूसल को उठाती हुई मधुली की छाया खिड़की से प्रतिक्षण अन्दर आकर फिर छिप-छिप जाती थी। आज अपनी हथेलियों को थूक से गीला करने के बजाए वह उन्हें अपने बार-बार उमड़ते आँसुओं से ही गीला कर लेती थी।

उस धमधम आवाज को सुनकर प्रेमबल्लभ सोचने लगा : क्या कोई ऐसा यंत्र नहीं बन सकता जिससे स्त्रियाँ धान कूटने की इस यन्त्रणा से बच जाएँ ? पिछले वर्ष जब उसकी विमाता बीमार थी, उसे भी धान कूटना पड़ा था। वह जानता है कि प्रतिदिन उस परिवार में चार पंसेरी धान कूटा जाता है। एक पंसेरी की एक घान होती है। एक घान के कूटने में आधे घंटे से कम नहीं लगता। दो घंटे में चारों घान इकहरी कूटी जाती है। फिर उन्हें सूप से फटकने में भी आधा घंटा लग जाता है। दोबारा कूटने में तीन घानें होती हैं। उन्हें भी पछोड़ने में घंटा भर से कम नहीं लगता। बड़े होने पर वह निश्चय ही एक ऐसी मशीन का आविष्कार करेगा जिसको हाथ से घुमाने से ही घानों को इकहराने, दोहराने और बार-बार पछोड़ने की आवश्यकता न रहेगी। केवल उस यंत्र में धान रखकर चाबी घुमाने से ही एक बोरा धान घंटे भर में कुटकर चावल में परिवर्तित हो जायेगा।

वह इसी प्रकार ढिबरी की ओर ताकता हुआ ध्यानमग्न था कि उसके पिता ने कहा—"अरे, अगर पढ़ना नहीं है तो क्यों मिट्टी का तेल खराब कर रहा है ? ढिबरी को बुझा दे और सो जा।"

दूसरे दिन वह मधुली के विषय में अपनी माँ से बातचीत करने

के लिए अनेक योजनाएँ बना रहा था। नहाकर आया तो अंगीठी के पास छोटे बच्चों के साथ बैठकर बोला—"नन्हे, क्या तुमने कल माधव की घरवाली को देखा ? उसका भाई कह रहा था…"

लेकिन उसकी बात छोटे बच्चे के रोने के कारण किसी ने न सुनी। मंझले भाई ने आग के सबसे निकट बैठने के प्रयत्न से नन्हे को जरा कोहनी से पीछे धकेल दिया था। तीनों बच्चे पीठ के बल गिर पड़े थे। माँ दौड़ी हुई आई और तीनों को अंगीठी के पास से दूर खींच ले गई। प्रेमबल्लभ उस समय अपने पाँव तपा रहा था। उसी की ओर संबोधित करके बोली—"बच्चों को बैठने को जगह नहीं, तू टाँग पसारकर अंगीठी घेरे बैठा है। सब गिर पड़े हैं। तेरे हाथ टूट गए हैं, जो उनको उठा भी नहीं सकता।"

कहाँ तो प्रेमबल्लभ मधुली के विषय में कहना चाहता था, कहाँ यह प्रतारणा। वह तत्काल उठकर अपने कमरे में चला गया। थोड़ी देर अपनी पुस्तकों को उलट-पुलटकर, फिर यह सोचकर कि माँ का क्रोध अब शान्त हो गया होगा, वह फिर अंगीठी के पास आया और माँ से पूछने लगा—"संक्रांति कब है, माँ ?"

यद्यपि उसकी विमाता पढ़ी-लिखी नहीं है लेकिन तिथि, त्योहार और पर्व खूब याद रखती है। पूजा के बहुत से श्लोक भी उसे कंठस्थ हैं। किसी भी पर्व के महात्म्य के विषय में पूछे जाने पर वह प्रसन्न होती है। वह बोली—"संक्रांति तो परसों है, क्या तुझे छुट्टी नहीं है ?"

"जरूर होगी," प्रेमबल्लभ ने माँ को प्रसन्न करते हुए कहा—"छुट्टी तो मुझे आज भी है, इतवार जो है। परसों जो महीना लगेगा, माँ……"

उसकी बात समाप्त नहीं हुई थी, बीच ही में उसकी माँ बोल उठी––"आज इलवार है, यह तो मैं भूल ही गई थी। जल्दी जाकर हरवाहे को तो बुला ला। दमकाभिड़ के खेतों की दीवारें गिर गई हैं, आज तुम तीनों मिलकर उनको चुनवा दो। तेरे पिताजी ने परसों ही कह दिया था। जा, उनसे भी पूछ ले और दौड़कर चला जा।"

चार

पहाड़ के ढाल पर काट-काट कर बनाए गए सीढ़ी के आकार के खेत गोल-मटोल पत्थरों की बिना चूने गारे की दीवारों के सहारे खड़े होने के कारण बहुधा वर्षाकाल में गिर जाते हैं। यदि अगली बरसात से पहले उन दीवारों को फिर न खड़ा किया जाए, तो थोड़े ही समय में खेत का अस्तित्व ही नहीं रहता, वह पहाड़ के ढलवान में मिलकर उसी से एकाकार हो जाता है। इन खेतों को स्थायी रूप देने में पहाड़ी कृषकों को वर्षों परिश्रम करना पड़ता है।

अपने पिता के साथ पहाड़ से मिट्टी खोदते, पत्थरों की दीवार खड़ी करके उसमें मिट्टी भरते और फिर मिट्टी को समतल करते-करते उस दिन सन्ध्या समय जब प्रेमबल्लभ लौटा, तो आँगन के किनारे ऊखल में उसने मधुली के स्थान पर अपनी माँ को धान कूटते पाया। गोपाल, नन्हे और मुन्नी ऊखल को घेरे बिखरे धानों

को बटोरकर ऊखल में डालने में अपनी माँ की सहायता कर रहे थे।

नन्हे उन दोनों को आते देख हाथ की झाड़ू फेंक दौड़कर उनके रास्ते में हो गया और बोला—"बावज्यू, बावज्यू[1], आज भावज अभी तक नहीं लौटी। रात हो गई है और वह अभी तक नहीं आई है। अभी तक उसका खाना रखा हुआ है।"

प्रेमबल्लभ के कन्धे पर गैंदी[2] थी। उसके हाथ पैर धूल से भरे थे। शरीर थक कर चूर हो रहा था। अब नन्हे के मुँह से यह सुनकर कि मधुली अब तक जंगल से लौटकर नहीं आई वह अपने ही को इसका दोषी समझकर लज्जा से गड़ सा गया। उसके थके पाँव अचानक ही थरथरा उठे। फिर मन-ही-मन अपने को समझाते हुए कि उसके लौटकर न आने में मेरा क्या दोष, मेरे कहने से तो वह बिना पूछे मायके भागी नहीं वह किसी प्रकार अपने शरीर को सम्भाले दरवाजे के किनारे सीढ़ियों तक पहुँचा और फिर वहाँ धम से बैठ गया।

थके पुत्र और पति को धूलीधूसरित आते देखकर भी बच्चों की माँ अप्रभावित-सी ऊखल में धान कूटती रही। बूढ़े जयदत्त का मन भी बहू के न लौटने की खबर सुनकर घबरा गया। कुदाल और फड़वे को सम्भालकर अपने को अविचलित-सा दिखाते हुए तथा बच्चे की बात को सुनकर भी अनसुनी करके वह पत्नी से बोला—"जरा पानी गरम कर दिया होता तो हाथ-पाँव धो लेते। ठंडे पानी से तो बिवाइयां उभर आएँगी।"

धमाधम जोर से मूसल चलाकर पत्नी हाँफती हुई बोली—

१. पिताजी। २. दोनों ओर चोंचवाली बड़ी कुदाल।

"पानी गरम हो कैसे ? चौका भी लगाया है किसी ने आज ? अभी तक कुलच्छनी का खाना धरा है। न जाने कहाँ मर गई !"

जयदत्त ने कहा—"चुप भी रहो। मैंने तुमसे कितनी बार कह दिया कि बच्चों के लिए मुँह से गाली न बका करो।"

"गाली न दूँ तो पूजा करूँ उसकी ?" पत्नी मूसल को थोड़ी देर के लिए विश्राम देती हाँफती हुई बोली—"बच्ची है वह ? बच्चों को इतनी बुद्धि कहाँ कि जंगल घास काटने जाएँ और वहीं से अपने मायके चल दें !"

पत्नी की बात का उत्तर न देते हुए जयदत्त ने कहा—"तुम बात तो समझती नहीं, उलटे लड़ती हो। यदि कोई बच्चा कोई बुरा काम करे तो उसे मारो-पीटो, लेकिन गाली मत दो।"

"मारो पीटो !" पति के स्वर की नकल करती हुई पत्नी बोली—"बिना मारे-पीटे तो यह दशा है उसकी, यदि उस पर हाथ उठाती तो न जाने क्या होता !"

पति ने बात का प्रसंग बदलकर अपने दोष को दबाते हुए पूछा—"क्या तुम्हें ठीक मालूम है कि वह जंगल से भागकर मायके चली गई ?"

"और जाएगी कहाँ ?" पत्नी ने फिर मूसल उठाते हुए कहा—"कल से मायके जाने की रट लगाए हुए थी।"

प्रेमबल्लभ अवसर पाकर अन्दर चला गया। उसे डर था कि कहीं उसी से उस बातचीत के सम्बन्ध में न पूछ लिया जाए, लेकिन उसके पिता जयदत्त ने ऊखल के निकट जाकर, फिर टहलते-टहलते अपनी अत्यधिक परेशानी और चिन्ता को यथाशक्ति अपने तक ही सीमित रखने का प्रयत्न करते हुए कहा—"उसके साथ जो और

बहुएँ जंगल गई थीं, वे लौट आई हैं क्या ?"

"बावज्यू," नन्हे ने उनके पाजामे को खींचते हुए कहा—"नत्थू की भावज भी आ गई, शिविया की माँ भी। वे कह रही हैं कि हमारी भावज के पाँव में पीड़ा हो रही थी, वह लंगड़ाते-लंगड़ाते उनके पीछे आ रही थी। चलरख के पास जो वह बड़ा-सा पत्थर है न बावज्यू, वहाँ तक आ गई थी।"

पत्नी ने पति की बात की अवहेलना करके धमाधम मूसल चलाना आरम्भ कर दिया।

जयदत्त को मन-ही-मन ऐसा क्रोध आया कि वह उस मूसल को उसी के सिर पर दे मारे, किन्तु संध्या के समय पत्नी के ऊपर हाथ चलाना उचित न समझकर उसने वहाँ से हट जाना ही उचित समझा। खोई हुई बहू के विषय में तत्काल गाँव में पूछताछ करना भी आवश्यक था। बच्चों के लिए समय पर खाना भी तैयार करना था। सुबह के जूठे बर्तनों और बासी चौके को बहू के लौटने की प्रतीक्षा में वैसा ही छोड़ना भी ठीक न था। प्रेमवल्लभ को पुकार कर जयदत्त ने कहा—"अरे प्रेमबल्लभ, सिगड़ी में जांती[1] रखकर कड़ाही में भात दूध गर्म करके बच्चों को खिला देना। बड़ा चौका सुबह धो दिया जाएगा, इस समय हम लोगों के लिए गोठ[2] के चूल्हे में तरकारी चढ़ा देना। वहीं रोटी बन जाएगी। मैं जरा नौले[3] तक हो आता हूँ।"

---

१. लोहे की आठ-नौ इंच ऊँची तिपाई जिसको सिगड़ी में रखकर उस पर पानी या चाय का बर्तन गर्म करने के लिए रख दिया जाता है। २. नीचे का खंड। ३. पानी की बावली।

प्रेमबल्लभ ने कहा—"पानी गर्म हुआ जाता है, नौले पर ठंढ में कहाँ जाइएगा !"

"अरे, नहीं," जयदत्त ने कहा—"नौले का पानी इस समय काफी गर्म रहता है। जरा अंगोछा दे दे। गीले हाथ-पैर लेकर लौटने में जाड़ा जरूर लग सकता है।"

अंगोछा लेकर जयदत्त सीधे पड़ोसी हरदत्त के घर की ओर बढ़ गया। नौला उसी के पिछवाड़े बांज के पेड़ों के तले था। हरदत्त अपने चौंतरे पर बैठा हुक्का गुड़गुड़ा रहा था। जयदत्त हुक्का नहीं पीता, लेकिन आज उसे अपनी बहू के विषय में पूछना आवश्यक था इसलिए उसके पास बैठ गया और बोला—"हरदत्त काका, आज प्रेम की बहू अब तक नहीं लौटी।"

हरदत्त अपना बन्द गले का कोट और घुटनों पर फटा दोहरा पाजामा पहने थे। बोले—"मैं तो इसीलिए तेरे यहाँ आने को था। मैंने तुझे दमड़ाभिड़ से लौटते देख लिया था। बहू को ढूंढने का प्रबन्ध करना चाहिए। सुना है चतरख तक तो वह आ गई थी। वहाँ से आगे भी वह लामे की बकरियों के साथ काली माई के थान आई है, ऐसा चामूसिंह लामा बताता है।"

"अच्छा, चामूसिंह की बकरियाँ उतर आई हैं क्या ?"

"हाँ, इस साल भी पूरी पाँच सौ बकरियाँ लेकर वह उतरा है। पिनांथ के मेले के दिन हिमघाटा पार करके चला बतलाता है। सत्रह दिन में यहाँ पहुँच गया है। तिब्बत में कम्यूनिस्टों से व्यापारियों को कोई परेशानी नहीं है, ऐसा कहता है। खैर, तिजारत की बात तो फिर हो जाएगी। वह कहता है कि चतरख के पास ही नाले में बाघ उसकी दो बकरियाँ उठा ले गया। वह नाला तो गाँव के बहुत

निकट है । मुझे डर है कि कहीं मैस्वाघ[1] न आ गया हो । इन्हीं दिनों पारसाल चितैली गाँव से, तुम्हें याद होगा, दो औरतों को उठा ले गया था ।"

"बड़े दिन के बाद," जयदत्त ने कहा—"मैस्वाघ इस ओर त्योरे साल भी आया था । सीताबनी में जो देसी शिकारी आ जाते हैं, उन्हीं के कारण यह घायल शेर इधर हमारे गाँवों की ओर भाग आता है ।"

"तो क्या सोचते हो ?" हरदत्त काका ने कहा—"क्या इसी समय चतरख की ओर चलते हो ? छिलुकों की आठ-दस अच्छी मोटी-मोटी लुकाइयाँ जलाकर अभी चलते हैं । वह न मिली तो कम से कम उसके सिर पर जो घास का बोझ था उससे तो जरूर पता चल जाएगा ।"

"हाँ, काका," जयदत्त ने कहा—"चलना तो जल्दी ही चाहिए । इधर गाँव में भी मैस्वाघ की खबर किए देते हैं । वह तो औरतों और बच्चों पर ही आक्रमण करता है । उस साल, काका, तुम्हें याद होगा, तुम्हारे घर के पिछवाड़े इसी नाले पर दुबका रहता था । चनियाँ की माँ और उस अन्धी पारो को यहीं पर से उठा ले गया था ।"

"हाँ, हाँ, याद क्यों नहीं है !" हरदत्त काका ने चिलम को फूंक कर हुक्का गुड़गुड़ाते कहा—"मुझे उस साल की याद है जब हमारा शिवदत्त पैदा हुआ था । उस वर्ष बड़ी भारी बहिया आई थी । ठीक दीवाली के दिन मदनसिंह के खलियान में दिन डूबते मैस्वाघ

---

१. नरभक्षी व्याघ्र ।

आया था।"

"उस मैस्वाघ की बात करते हो!" एक पतले सुरीले स्त्रैण स्वर ने व्यवधान डालकर कहा—"भला, उसे कौन नहीं जानता है! लो, मास्टर चाचा, जरा चाय पी लो, बावज्यू की बातों का जहाँ एक बार क्रम चला, तो फिर कभी समाप्त ही नहीं होता।" बाधा डालने वाली हरदत्त की विधवा लड़की धर्मा थी। मास्टर चाचा तम्बाकू नहीं पीते, इसीलिए उनके लिए एक गिलास चाय बनाकर ले आई थी।

हरदत्त काका ने उत्साह से कहा—"मैं खलियान में न पहुँचता तो धर्मा बच पाती? हाँ, बेटी, जरा एक छिलुके की लुकाई तो बाल ले। मैं और मास्टर अभी गाँव से आठ दस आदमी एकत्र करके चतरख तक जाएँगे।"

हरदत्त काका ने फिर कहना आरंभ किया—"हाँ तो, जयदत्त, मैं उस मैस्वाघ की बात कह रहा था। महालक्ष्मी पूजा के दिन मैं खलियान में काम कर रहा था। मडुवे[1] की दाँप करके हरवाहा बैलों को पानी पिलाने गया था। मैंने दो कुथले[2] भरकर एक किनारे पर रख दिए थे कि हरवाहे के आने पर उन्हें अन्दर संभाल लूँगा। अपना अंगोछा भी उन्हीं के ऊपर रखकर मैं छलनी उठाने के लिए अन्दर आया था कि छज्जे पर से देखता हूँ एक छाया सी आकर फिर लुप्त हो गई। सोचा, कोई चील होगी। लेकिन ज्यों ही दहलीज पर पाँव रखा तो शेर। मैं पल भर को, बड़ा डर गया। लेकिन शेर छलाँग

---

१. कोदों। २. साधारण बोरे से कुछ कम चौड़ी बोरियाँ, किन्तु उससे डेढ़गुनी लम्बी।

मारकर पिछवाड़े बांज के पेड़ों की ओर चला गया। देखता क्या हूँ कि दूसरे ही क्षण उसने मडुवे से भरा कुथला दाँतों में दबा रखा है। उसने उस मटमैले लम्बे कुथले को ही कोई औरत समझा। बांज के पेड़ों को भी क्षण भर में पार करके कुथले को कन्धे पर लटकाए वह फिर आगे बढ़ गया। मुझे उस शेर की बुद्धि पर तरस आने लगा। मन-ही-मन बड़ी हँसी आ रही थी। मैंने जोर से पुकारा—'देखो, देखो, मैस्वाघ!'

"कुछ औरतें उस समय घास लेकर जंगल से लौट रही थीं। शेर को देखते ही उनकी बुद्धि ऐसी गायब हो गई कि घास के गट्ठर फेंककर वे शेर के पीछे-पीछे चलने लगीं। पहाड़ की चढ़ाई पर कुथले को दाँत से पकड़े और गर्दन पर लटकाए शेर बढ़ा जा रहा था। उसके पीछे चारों सयानी औरतें और यह धर्मा भागी जा रही थीं। लोगों ने आवाजें दीं, इनको मना किया कि शेर का पीछा न करो, लेकिन इनको तो शेर की मोहिनी लग गई थी। इनके होश-हवास ठिकाने न थे। अंत में मैं ही लाठी लेकर दौड़ा। उधर सूबेदार का लड़का भी बन्दूक लेकर आया। काफी दूर निकल जाने पर उस बड़ी सी चट्टान पर, जो टीकाराम के नए मकान के सामने है, शेर बैठ गया और उसने अपने दाँतों से कुथले को फाड़ दिया। सारा मडुवा टंकी के पानी की तरह बह गया और खाली बोरा शेर के दाढ़ों में अटक रहा।

"हम लोग औरतों को बचाने शेर की ओर बढ़ रहे थे। औरतें अब भी उसी चट्टान की ओर बढ़ी चली जा रही थीं। धर्मा छोटी होने के कारण सबसे पीछे रह गई थी। मैंने दूर ही से लाठी फेंकी जो उन औरतों के जा लगी, लेकिन फिर भी वे न रुकीं। तब लपककर

मैंने धर्मा का हाथ पकड़ा। ओह, इसमें न जाने इतना बल कहाँ से आ गया था! इसने अपना हाथ छुड़ा लिया और फिर शेर की तरफ बढ़ गई। मैंने अब जोर का एक थप्पड़ इसके मुँह पर मारा और फिर इसे पकड़ लिया।

"तभी चटाक से एक और चांटे की सी आवाज हुई। बिजली सी चमकी। देखता क्या हूँ कि धर्मा से आगे जो औरत—बुधिया की माँ—थी उसे कंधे पर लटकाए शेर फिर छलांग मारकर चट्टान से आगे निकल गया। लेकिन फिर भी शेष तीनों औरतें उसी ओर भागने लगीं जिधर शेर भागा था।

"सूबेदार के लड़के और मैंने बड़ी मुश्किल से उन्हें रोका। शेर की मोहिनी से उनकी बुद्धि ऐसी भ्रष्ट हो गई थी कि उन्हें कुछ सूझता ही न था। शेर तो बड़ा बहादुर जानवर होता है। उसे इसीलिए जंगल का राजा कहते हैं। लेकिन वही शेर मैस्वाघ हो जाता है जिसे चोट लग जाती है और जो अपंग हो जाने के कारण जंगली जानवरों का शिकार करने में असमर्थ हो जाता है। भूख से व्याकुल होकर वह गाँव के निकट आ जाता है और एक बार आदमी का मांस खा लेने पर उसे फिर जंगली जानवरों का मांस अच्छा ही नहीं लगता। अगर शिकारी लोग शेर को घायल न करें अथवा उसके घायल हो जाने पर उसे जान से मार डालें, तो हम लोगों पर यह मुसीबत नहीं आ सकती।"

लुकाइयाँ आ गईं, बात का तारतम्य रुक गया। जयदत्त और हरदत्त काका गाँव के आठ-दस लोगों को साथ लिए चतरख की ओर चल दिए।

पाँच

छिलुकों के प्रकाश में दूर से प्रत्येक पत्थर और झाड़ी दैत्य-सी दिखाई देती थी। टोली के नवयुवकों के हृदय दहल जाते थे। लेकिन बूढ़े रात-बिरात इन मार्गों पर चलते थे। उन्हें यह भी ज्ञात था कि जंगली जानवर आग से डरते हैं। वे लोग निःशब्द आगे बढ़े जा रहे थे। आस-पास के पहाड़ी गाँवों के लोग भी पहाड़ पर चढ़ती हुई इस टोली को देखकर समझ गए थे कि कहीं कोई दुर्घटना हो गई है। चतरख की चट्टानों के पास नाले के किनारे चामूसिंह लामा के तीन तंबू लगे हुए थे। पास में भेड़ें जुगाली कर रही थीं। चार भोटिए कुत्ते उनकी रक्षा कर रहे थे। छिलुकों का प्रकाश जब तंबुओं पर पड़ा तो कुत्तों ने जोर से भौंकना आरम्भ कर दिया। उनकी तेज आवाज आस-पास की पहाड़ियों में प्रतिध्वनित होने लगी।

लम्बा-सा ऊनी चोगा पहने, कमर में ऊनी रस्सियाँ बाँधे और

हाथ में तकली नचाते चामूसिंह तम्बू से बाहर निकला। कुत्तों को शांत करके वह उस टोली को संबोधित करके बोला—"के भव हो? के भव हो?"[१]

हरदत्त काका ने पुकारकर कहा—"मास्टर की बहू जंगल से नहीं लौटी।"

"अच्छा, अच्छा," चामूसिंह बोला—"माई के थान तक देख आना। वहाँ तक तो मैंने भी उसे आते देखा था। वापस आते समय जरा मेरे पास आकर तंबाकू पीते जाना।"

हरदत्त काका ने कहा—"अच्छा।" और टोली आगे बढ़ती गई। काली माई का थान अगली पहाड़ी की एक चोटी पर था। उसके चारों ओर टोली के सभी आदमी घूम-घूमकर देखने लगे। कहीं कुछ न दीख पड़ा। उससे आगे पानी के सोते तक जाने के लिए टोली बढ़ी। उस सोते के पास बहुधा मैस्वाघ बैठा पाया जाता था। इसीलिए सब लोग जोर-जोर से 'हाड़च! हूड़च!' पुकारते हुए आगे बढ़ने लगे। सोते के पास घास का बंधा गट्ठर दूर ही से दीख पड़ा। लेकिन प्रेमबल्लभ की बहू का पता न चला। पानी के कुंड में, पास ही पड़े हुए चीड़ के पेड़ की जड़ों के गट्ठे में और बड़े-बड़े सभी पत्थरों के आगे-पीछे छिलुकों के प्रकाश में देखा गया, पर प्रेमबल्लभ की बहू का कोई चिन्ह नहीं मिला।

निराश होकर हरदत्त काका ने कहा—"घास तो ले ही चलो।"

सबको आशंका होने लगी कि बहू को मैस्वाघ ही ले गया होगा। लेकिन किसी ने कुछ कहा नहीं। अपने-अपने विचारों में

---

१. क्या हुआ? क्या हुआ?

तल्लीन से वे लोग वापस लौट आए। घास का गट्ठर इतना भारी था कि कुछ दूर सिर पर ले जाने में मास्टर को पसीना आ गया। अपने एक साथी से उसे कुछ दूर ले चलने की प्रार्थना करते हुए मास्टर ने कहा—"मुझे तो सिर पर बोझ ले जाने की आदत ही नहीं है। बचपन में जब कभी जंगल से घास ले जानी पड़ती थी तो मैं पीठ पर सुयाटे[1] को ही लगाकर ले जाता था।"

चामूसिंह के तम्बू के पास टोली दो दलों में बँट गई। घास का गट्ठर लिए नवयुवक गाँव को लौट गए, केवल जयदत्त और हरदत्त काका एक लुकाई लिए चामूसिंह के डेरे की ओर बढ़े।

अब हरदत्त काका ने जयदत्त से अकेले में कहा, "मैस्वाघ ही ले गया है। वह बेचारी और औरतों से बिछुड़ गई होगी। मैस्वाघ उसकी ताक में रहा होगा और पानी के सोते के पास मौका पाकर उसे उठा ले गया होगा।"

"लेकिन आस-पास कहीं न कोई कपड़ा फटा मिला, न उसका कोई अंग ही," जयदत्त ने कहा—"मैस्वाघ तो खून पीकर लाश को पास ही छोड़ भी जाता है। छीना-झपटी में कपड़े फट जाते हैं। पिछौरा[2] तो पास में पड़ा मिलना चाहिए था।"

"हाँ, यही बात मेरी समझ में भी नहीं आती," हरदत्त काका ने कहा—"इस प्रकार उसका कोई भी चिन्ह न मिलने से मालूम होता है कि शायद यह दोखुटिए की करतूत होगी। लड़की तो देखने में बड़ी सुन्दर थी।"

"तो क्या दोखुटिया[3] उसे उठा ले गया होगा ?" जयदत्त ने

---

१. घास के पूलों को एक डंडे में छेद करके ले जाने का उपक्रम। २. ओढ़नी। ३. दो पैरों वाला व्याघ्र—आदमी।

लम्बी साँस लेकर कहा—"इस साल अब तक तो ऐसी कोई घटना इस ओर नहीं हुई। देस की ओर से नवंबर में दोखुटिए कम ही आते हैं। वे तो उत्तरायणी के मेले या बदरीनारायण की यात्रा के समय ही आते थे।"

अंधेरे में चामूसिंह पास ही खड़ा मिल गया। वह कुत्तों को शांत करने और भेड़ों पर एक नजर डालने तम्बू से दूर निकल आया था। यद्यपि उन दोनों का ध्यान उसकी ओर न था, लेकिन वह उनकी बातें सुन रहा था।

अब पास आकर 'जयराम जी की' कहकर उन दोनों को अपने तम्बू में ले गया। वहाँ ऊन के बड़े-बड़े गट्ठरों पर बिछे ऊनी कालीनों पर बैठने का संकेत करके स्वयं भी एक गट्ठर के सहारे बैठकर बोला, "मैस्वाघ का डर तो नहीं, दोखुटिए का सन्देह मुझे भी है। आज मैं जब मिट्टी का तेल लेने श्यामलाल की दुकान पर गया, तो वहाँ मेरी भेंट उस डॉक्टर से अचानक ही हो गई।"

"डॉक्टर शर्मा से ?" जयदत्त ने तत्काल प्रश्न किया—"मैं उसे जानता हूँ।"

"हाँ, वही," चामूसिंह ने कहा—"इस रात आप लोगों को यहाँ बुलाने का मेरा उद्देश्य यही था कि मैं आप सबको उसकी उपस्थिति से अवगत करा दूँ। वह असली डॉक्टर नहीं, बना हुआ डॉक्टर है। चार-पाँच वर्ष पहले वह किसी ताल्लुकेदार के साथ बदरीनारायण की यात्रा को आया था। तब उसने अपने को उस ताल्लुकेदार का घरेलू डॉक्टर बताया था। उस साल नितीघाटे की ओर की तीन-चार बहुएँ भगाई गईं। ताल्लुकेदार को शायद सन्देह हो गया कि इस डॉक्टर का उसमें हाथ था। वह नौकरी से हटा दिया गया था। तब

से यह आदमी अकेला ही अपना दवा का बक्स और एक नौकर को साथ लेकर आता है। डॉक्टरी के बहाने गाँवों में घूमता है। लेकिन दवा के नाम पर मीठी-मीठी सफेद गोलियों के अतिरिक्त इसके पास और कुछ नहीं रहता। इस साल तो बिना नौकर के अकेला ही आया है।"

जयदत्त को याद आ गया कि यही डॉक्टर शर्मा एक बार पहले भी किसी औरत को भगाने के मामले में पकड़ा गया था। बाद में पुलिस उसके विरुद्ध मुकदमा नहीं चला सकी थी। स्वयं उसने डॉक्टर शर्मा को छुड़ाने का प्रयत्न किया था। छोटे मुन्ने के पेट के कीड़ों की जो दवा डॉक्टर शर्मा ने दी थी, उससे निस्सन्देह फायदा हुआ था। अब उसका मन न मानता था कि वही डॉक्टर शर्मा उसी की बहू पर हाथ साफ करेगा। वह अब भी डॉक्टर की होमियोपैथिक दवाओं की प्रशंसा में कुछ कहना चाहता था कि हरदत्त काका ने अपनी बात कहकर बाधा डाल दी। वह बोले—"ठीक कहते हो, चामूसिंह। इन देसियों का क्या एतबार! उस साल एक आलू का इन्स्पेक्टर आया था। हम लोगों ने उसकी खूब आवभगत की थी। प्रधान ने उसे अपने घर पर ठहराया था। जगतसिंह उसके लिए जंगल से कांकड़ और घुरड़[1] मारकर लाता था। बीच में बीमार पड़ गया था, तो हम लोग पन्द्रह कोस पैदल जाकर रातोंरात सिविल सर्जन को बुला लाए थे। अन्त में अच्छा होकर वही रमा को भगा ले जाने की कोशिश करने लगा। उसकी ससुराल तक पहुँचा। मेरे काका कहते थे, मरा देसी भी जिन्दे पहाड़ी को ठग लेता है।"

---

१. जंतु विशेष।

"ठीक कहते हो," चामूसिंह ने हुक्के से चिलम को निकालकर हरदत्त काका को देते हुए कहा—"त्योरे साल चम्पावत के इलाके में जो दोखुटिया आया था, वह भी ऐसे ही डॉक्टरी करता था। कहीं बहुओं के मायके का रिश्तेदार और कहीं सिपाहियों की पलटन का पेंशनर डॉक्टर बनकर ठाकुरों के गाँवों में घूमता था। पहाड़ी गीत लिख-लिखकर अखबार में उतारता था। उत्तरायणी के मेले में से तीन बहुओं को उड़ा ले गया। अब तक न उस डॉक्टर का पता चला है और न उन बहुओं का।"

जयदत्त ने उन दोनों की बातें सुनकर तत्काल डॉक्टर शर्मा के पास जाने का निश्चय किया। डॉक्टर शर्मा से उसका इतना घनिष्ठ परिचय है कि वह उससे किसी समय भी मिलने जा सकता था। लेकिन अपने इस निश्चय को उन दोनों पर प्रकट करने में उसे संकोच हो रहा था। डॉक्टर शर्मा भी औरतों को भगानेवाला दोखुटिया है, इस बात पर विश्वास न होता था। लेकिन हरदत्त काका के उस कथन से कि इन देसियों का क्या एतबार, मन में शंका भी उठती थी। हरदत्त काका को खाँसी आ जाने के कारण कुछ देर जयदत्त इसी प्रकार सोचता रहा और खाँसी रुकने पर बोला—"हरदत्त काका, चलो दवा माँगने के बहाने डॉक्टर शर्मा के पास चलें। मील भर चलना पड़ेगा।"

"हाँ, हाँ, जरूर चलेंगे" हरदत्त काका ने कहा—"अभी चलो। रास्ते में शेरसिंह घटवार[1] मिल जाएगा। उसे भी साथ लेते चलते हैं।"

छिलुकों की लुकाई को फिर बालकर जयदत्त और हरदत्त काका

---

१. पनचक्कीवाला।

नदी के गोलगोटोल पत्थरों को पार करके पनचक्की के पास पहुँच गए। शेरसिंह घटवार पनचक्की के आँगन में ही आग ताप रहा था। उसे भी साथ ले लिया गया। तीनों खेतों को पार करके श्यामलाल बनिये की दुकान के दुमंजिले पर जा चढ़े।

डॉक्टर शर्मा बिस्तर पर लेटे थे। सिरहाने एक स्टूल पर लालटेन जल रही थी।

अधखुली खिड़की से शेरसिंह ने पुकारा—"डॉक्टर साहब, डॉक्टर साहब !"

"कौन है ?" डॉक्टर ने रजाई के बाहर मुँह निकालकर लालटेन की रोशनी को तेज करते हुए कहा—"क्या है ?"

"मैं हूँ शेरसिंह घटवार," शेरसिंह ने कहा—"जरा दवा चाहिए।"

"कल सुबह आना।" डॉक्टर शर्मा ने कहा।

"कल तक तो वह बचेगी भी नहीं," शेरसिंह ने झूठमूठ कहा—"बड़ा दर्द बताती है।"

"कौन ? क्या घरवाली भी साथ है ?" डॉक्टर ने पूछा। शेरसिंह के पीछे किसी और व्यक्ति की छाया को उसकी पत्नी की ही छाया समझकर बिस्तर से उठते हुए उसने फिर कहा—"अच्छा, किवाड़ खोलता हूँ।"

दरवाजा खुलते पर शेरसिंह और उसके पीछे हरदत्त काका और जयदत्त को कमरे में घुसते देख डॉक्टर शर्मा घबरा गए। शेरसिंह के चेहरे पर हँसी का-सा कुटिल भाव देखकर उन्हें और भी भय लगने लगा। यह तो वह जानते ही थे कि वह गाँव के उद्दंड लोगों में गिना जाता है।

बिना किसी भूमिका के उजड्ड हरदत्त काका ने चारपाई को

उलट-पलटकर, अन्दर के बन्द कमरे में दो क्षण कान लगाकर कहा—"जरा कमरा तो खोलो, डॉक्टर। किसी के साँस लेने की-सी भनक कान में पड़ती है। सुना है तुम बड़े शैतान हो !"

डॉक्टर शर्मा सकपका गए, लेकिन फिर भी साहस करके बोले—"तुम लोग बड़े जंगली हो ! क्या कोई चोर-डाकू समझ रखा है मुझे तुम लोगों ने ? घुसे चले आते हो और कमरा भी खुलवाना चाहते हो। कमरा नहीं खुलेगा।"

"चोरी और सीनाजोरी ?" हरदत्त काका ने कहा—"गाँव की बहू-बेटियों से नजरें लड़ाते हो, उन्हें फुसलाकर भगा ले जाते हो। बड़े डॉक्टर बने हो !"

शेरसिंह ने कमरे की सांकल गिरा दी और भड़ाक से किवाड़ खोल दिए। जयदत्त ने लालटेन उठा ली। लेकिन कोठरी खाली थी।

जयदत्त डॉक्टर से इस अभद्रता के लिए क्षमा माँगना चाहता था, लेकिन उसके कुछ कहने के पूर्व ही हरदत्त काका ने कहा—"डॉक्टर साहब, अपना बोरिया-बिस्तर लेकर आप कल सुबह यहाँ से रफ़ूचक्कर नहीं हुए, तो फिर आपकी कुशल नहीं। पुलिस-बुलिस की हम पहाड़ी लोग परवा नहीं करते, हड्डी-पसली ठीक कर देंगे।"

जयदत्त को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि इस अकारण धमकी के उपरान्त भी डॉक्टर शर्मा कुछ न बोले, केवल आँखें तरेरकर उन तीनों के सीढ़ियों से उतरने की प्रतीक्षा करते रहे।

छः

डॉक्टर शर्मा ने उन तीनों विघ्नकर्ताओं की जली-कटी बातों और उनके द्वारा किए उस अनधिकार प्रवेश जैसे अपमानजनक अत्याचार को चुपचाप सहन कर लिया। इसका कारण उनकी भलमनसाहत या सहनशीलता न था। वास्तव में उस दिन दोपहर को चामूसिंह की भेड़ों के झुंड के पीछे आती हुई अकेली मधुली को देखकर डॉक्टर शर्मा ने भी अपनी चाल मंद कर दी थी। वह चुपचाप उसका पीछा करते रहे। पानी के सोते के पास जब मधुली ने अपने सिर का बोझ उतार दिया और पानी पीकर अपने दुखते पाँव के तलुओं को देखने में तल्लीन थी तो किसी ने उसके बिलकुल निकट आकर कहा—"खुट में पीड़ है रे के ?"[1]

बात यद्यपि पहाड़ी में कही गई थी, लेकिन बोलने के ढंग से

---

१. पाँव में दर्द है क्या ?

ही मधुली समझ गई कि प्रश्नकर्ता कोई विदेशी है। लज्जा के मारे उसे पसीना आ गया। अपना आँचल खींचकर वह पनघट के चिकने पत्थरों में चिपटकर उन्हीं में समा जाने का-सा प्रयत्न करने लगी।

प्रश्नकर्ता ने अपने चारों ओर देखकर और यह विश्वास हो जाने पर कि कहीं कोई और तो नहीं देख रहा है, अपने हाथ का चमड़े का बैग उन्हीं पत्थरों पर रख दिया और झुककर मधुली के खुरदरे पाँव को पकड़कर कहा—"दवा लगा दूँ?"

अचानक पकड़ में आई हुई चिड़िया की भाँति अपने अंग-प्रत्यंग को फड़फड़ाती मधुली उठ खड़ी हुई और दूर जाकर पहाड़ी में बोली—"कौन हो तुम ऐसे बेशरम?" और कमर में खोंसी हुई दरांती निकाल ललकारकर बोली—"जरा भी आगे बढ़े तो अंतड़ियाँ निकाल लूँगी।"

"अरे-रे-रे!" डॉक्टर ने दोनों हाथ फैलाकर बच्चों को पुच-कारनेवाली आवाज में कहा—"मुझे नहीं पहचानती, मैं डॉक्टर हूँ। दवादारु तो……"

डॉक्टर शब्द को सुनते ही…'ओ इजा[1], दोखुटिया!' चिल्लाकर मधुली ने मारे घबराहट के हाथ की दरांती वहीं गिरा दी और घास के गट्ठर को वहीं छोड़कर भाग खड़ी हुई। डॉक्टर 'अरे, अरे' कहता हुआ कुछ दूर आगे बढ़ा। मधुली उसे अपने पीछे आता देख झाड़ियों को फांदकर बांज के घने जंगल की ओर दौड़ पड़ी। उसे अपने पाँव की बिवाइयों का दर्द याद भी न रहा। लगातार आधे मील तक दौड़कर वह पहाड़ के दूसरे मोड़ पर पहुँच गई।

---

१. माँ।

वहाँ एक पेड़ के नीचे बैठकर उसने अपने लहूलुहान पाँवों को कुछ विश्राम दिया और फिर धीरे-धीरे उस पहाड़ी पर चढ़कर चतरख की ओर देखने लगी कि दोखुटिया कहीं अब भी तो उसका पीछा नहीं कर रहा है। खूँखार व्याघ्र की सी उसकी उस ललचाई दृष्टि का स्मरण करते ही मधुली का कलेजा अब भी काँप उठता था।

मधुली डॉक्टर शर्मा को न जानती थी, लेकिन यह उसे ज्ञात था कि औरतों को उड़ा ले जानेवाला दोखुटिया कभी डॉक्टर और कभी साधू-संत बनकर आता है। मीठी-मीठी बातें करता है। बहू-बेटियों का बड़ा हितैषी बनता है। उन्हें कष्टमय पहाड़ी वातावरण से छुटकारा दिलाकर अच्छे घर और वर की आशा दिलाता है। जो लड़की उसके जाल में फँस जाती है वह फिर कभी लौटकर नहीं आती। बचपन में उसने सुना था कि दोखुटिया औरतों और बच्चों का अपहरण करके उन्हें 'नारायण' तेल निकालनेवालों के हाथ बेच देता है। वे लोग पकड़े हुए बच्चों को उल्टा लटकाकर गुद्दी में छेद करके तेल निकालते हैं, लेकिन अब उसे गाँव की सयानी औरतों से ज्ञात हुआ कि दोखुटिया औरतों को देश की मंडियों में ले जाकर व्यभिचार के लिए बेच देता है।

इन्हीं विचारों में खोई-सी मधुली पहाड़ की चोटी पर पहुँच गई। इस चोटी पर चढ़ना मधुली को बहुत भला लगता है। यहाँ से दोनों कोशी और कर्नाली नदियों की घाटियों का सुन्दर दृश्य दीखता है। एक ओर कोशी नदी के दोनों ओर हरे-भरे समतल खेत, उनके मध्य मोटर की काली चमचमाती सड़क, दोनों ओर ऊँचे उठते हुए सीढ़ी के आकार के खेत, उनके मध्य अखरोट और दाड़िम के पेड़ों के निकुंजों के बीच बसे वे गाँव। गाँवों के पीछे पर्वतों की

ऊँची-नीची अनेक चोटियाँ जिन पर जानवरों और चरवाहों के आने-जाने से टेढ़े-मेढ़े अनेक पतले-पतले रास्तों का जाल-सा बिछा हुआ है। इन सब के पीछे गहरे हरे रंग के घने जंगलों से आच्छादित पर्वत-श्रेणियाँ। दूसरी ओर कर्नाली की घाटी तो मधुली को और भी चित्ताकर्षक लगती। यह घाटी पूर्व से पश्चिम की ओर फैली थी। उत्तर पूर्व की ओर पहाड़ों के पीछे हिमालय की धवल श्रेणियाँ नित्य झांकती-सी रहती थीं। नदी के किनारे मधुली के पिता का गाँव था। उनका दोमंजिला कमेट[1] से पुता मकान इतनी दूर से भी स्पष्ट चमकता था। गर्मी के दिनों में तो मधुली इतनी दूर से अपने घर के पिछवाड़े उगे खुबानी के पेड़ों से पता लगा लेती कि अभी उसके मायके आने की प्रतीक्षा में कुछ खुबानियाँ पेड़ पर बची हैं कि नहीं। आज भी उसने अपने पिता के मकान की ओर एक दृष्टि डाली। खुबानी के पेड़ों के पास सूखे घास के चार लुटे[2] मकान से भी ऊँचे खड़े थे। खुबानी के पेड़ पतझड़ के कारण सूखे-सूखे से दीख रहे थे। स्लेट की छत पर लाल-लाल कद्दू सुखाने डाले गये थे। मधुली उनको गिन लेने का लोभ संवरण न कर सकी—इक्कीस थे, लेकिन अंतिम कद्दू सफेद था। उसकी चमक से मधुली ने अनुमान लगाया कि वह पेठा होगा।

दिन ढल रहा था। समय पर न लौटने से सास बहुत बिगड़ेगी। वैसे ही उसे बहुत देर हो गई थी। यह सोचकर मधुली ने एक बार फिर अपने पिता के मकान को देखकर लम्बी साँस भरी, फिर मील

---

१. सफेद मिट्टी। २. गोलाकार तीस-पैंतीस फुट ऊँचे पयाल और सूखी घास के विशेष रूप से बनाए गए ढेर।

भर नीचे पानी के सोते की ओर देखा। घास का गट्ठर अभी वैसे ही रखा था। कुछ दूर दरांती भी चमकती दीखती थी। दोखुटिया न था। मार्ग पर और आगे दूर सड़क तक कहीं चमड़े के बैगवाले उस दोखुटिया का अस्तित्व भी न था। मधुली तीव्र गति से पहाड़ की चोटी पर से उतरने लगी। उस उत्तेजना के उपरांत उसका मन शांत था। पाँवों से बहुत-सा विषैला रक्त बह निकला था। दौड़ने से उनमें कुछ गर्मी भी आ गई थी। पहले की-सी सनसनाहट न थी। किसी पहाड़ी गीत की लय को मीठे स्वर से दुहराती मधुली लगभग दौड़ती हुई-सी पहाड़ से उतर रही थी। जंगल से निकलकर ज्योंही वह देवदार के पेड़ों के पास गाँव को जानेवाली पगडंडी पर आई कि एकाएक ठिठककर रह गई। वही दोखुटिया दोनों हाथ कमर पर रखे रास्ते के बीच खड़ा उसके गाने को कान लगाकर सुन रहा था और ज्योंही उन दोनों की आँखें चार हुईं फिर हाथ फैलाकर हँसता हुआ बोला, "आओ, आओ!" उसकी दृष्टि में वही पहले का सा भाव था। वह न जाने और क्या बकता गया, मधुली की समझ में न आया। मधुली को रास्ते से हटकर दूसरी ओर से सोते की ओर भागने लगी लेकिन दोखुटिया उसके पीछे-पीछे स्वयं भी सोते की ओर भागने लगा। मधुली की समझ में न आया कि अपनी जान बचाने के लिए किस ओर भागना चाहिए। उन देवदार के वृक्षों के बीच से होते हुए वह चिल्लाने लगी—"दोखुटिया आया! दोखुटिया आया! बचाओ, दोखुटिया!" परन्तु दूर तक कोई दूसरा व्यक्ति न दीख पड़ा।

तभी सयानी औरतों की बताई यह बात उसे याद आ गई कि जब भालू पीछा करे तो बचाव के लिए पहाड़ से सीधे नीचे की ओर

भागना चाहिए और जब दोखुटिया पीछा करे तो सीधी चढ़ाई की ओर। भालू अपनी आँखों के आगे लम्बे बालों के आ जाने से उतार की ओर नहीं देख पाता और पहाड़ी मार्गों से अनभ्यस्त परदेसी दोखुटिया अपने पाँव चढ़ाई पर जमाने में यह नहीं देख सकता कि शिकार किस ओर भागा। वह पेड़ों की आड़ में होकर सरपट उसी चोटी की ओर भागने लगी जिससे कि अभी-अभी उतरी थी।

आधे घंटे में मधुली चोटी के पास पहुँच पाई। चोटी से कुछ दूर हटकर वह एक बड़ी-सी चट्टान के पीछे कर्नाली की घाटी की ओर मुँह किए बैठ गई। अपने घास के गट्ठर की ओर देखने का उसे साहस न होता था। डर था कि कहीं दोखुटिया उसी चोटी की ओर न आ रहा हो। उस चट्टान के पीछे दोपहर की धूप बड़ी सुहावनी लग रही थी। आस-पास पड़े हुए पत्थरों और ढेलों को अपनी रक्षा के लिए समेटकर, ताकि दूर से आक्रांता पर हमला कर सके, मधुली ने अपने सिरहाने रख लिया और धूप में अपनी थकान मिटाने के लिए लेट गई। कभी-कभी चट्टान के ऊपर सरक कर दुबके-दुबके वह पगडंडी की ओर देख लेती कि कहीं दोखुटिया भी न आ पहुँचा हो। बहुत देर तक इस प्रकार छिपे रहकर मधुली फिर पेड़ों की आड़ में होकर कर्नाली की घाटी की ओर यह देखने के लिए चली गई कि यदि रास्ता साफ हो तो वह गाँव की ओर लौट सके। उसने देखा पानी के सोते के पास ही एक चपटे पत्थर पर बैठा दोखुटिया अपनी दाढ़ी बना रहा है। शायद वह उसी के लौटने की प्रतीक्षा में वहाँ पर अपने नहाने-धोने का उपक्रम कर रहा था।

मधुली की समझ में न आया कि वह कैसे घर लौटे। उस सोते के मार्ग को छोड़कर दूसरा कोई मार्ग गाँव जाने को नहीं है। जंगल

के किनारे दूसरी चोटी पर जाकर, वहाँ से दूसरे गाँव में उतरकर, नदी के किनारे-किनारे अपने गाँव तक जाने में साँझ हो जाएगी। फिर इतनी देर के उपरांत खाली हाथ घर लौटा भी कैसे जा सकता है ! कुछ देर इसी द्विविधा में रहकर मधुली ने पिरूल[1] इकट्ठा करना आरम्भ किया कि जल्दी में कुछ पिरूल ही खेतों में सोतर[2] के लिए ले चला जाए। दोखुटिये की बात बतला देने पर सास देरी के लिए क्रोधित न होगी।

अब मधुली पिरूल बटोरने में लग गई। लेकिन उस ऊँचाई पर चीड़ के पेड़ कम थे, देवदार और बाँज[3] ही के वृक्ष सर्वत्र दीखते थे। हार कर वह फिर चट्टान के पास आ गई और जो कुछ पिरूल एकत्र हुआ था उसे सिरहाने रखकर लेट गई कि जब दोखुटिया पानी के सोते से टलेगा या कोई और गाँव का आदमी उस ओर जाता दीखेगा तो वह भी चल पड़ेगी और घास के गट्ठर ही को लेकर लौटेगी। उसे धूप में लेटे-लेटे वृक्षों पर झींगुरों का निरन्तर चीं-चीं शब्द और बाँज के पेड़ों के छालछबीले की गन्ध बड़ी ही सुहावनी लग रही थी। मधुली के थके स्नायुओं को उन दोनों से बड़ा चैन मिल रहा था। थोड़ी ही देर में उसे झपकी आ गई।

१. चीड़ की गिरी हुई पत्तियाँ। २. खाद (कम्पोस्ट)। ३. बलूत (ओक)।

सात

जब मधुली की आँखें खुलीं तो सिर पर चट्टान की छाया पड़ रही थी। धूप में दोपहर की-सी तप्तता न रह गई थी। अपने शरीर को झटका देकर वह उठ बैठी। अनायास ही मुँह से निकल पड़ा—"बाब रे ! इतनी देर हो गई !" हृदय धकधक करने लगा। दौड़कर वह उस पर्वत-श्रेणी की ओर कोशी की घाटी में देखने के लिए भागी। पहाड़ के ढाल पर से अब धूप उतरकर नदी के उस पार चली गई थी। इस ओर अँधेरा-सा लगता था। सोते के पास इतनी दूर से आदमी या घास के गट्ठर को पहचानना कठिन था। धूप से तप्त भूभाग अब छाया में अवस्थित हो जाने के कारण कुहरे के पतले आवरण से ढक गया था। अब तो उस मार्ग से नीचे उतरना सम्भव ही न था। शायद दोखुटिया अब भी उसके लौटने की प्रतीक्षा में पानी के सोते के पास बैठा हो। इतनी देर से घर लौटने पर सास-ससुर दोनों बहुत

बिगड़ेंगे। लेकिन लौटना तो जरूरी है। रात भर तो जंगल में नहीं रहा जा सकता।

मधुली अपने को बार-बार कोसने लगी कि न जाने क्यों अपनी थोड़ी-सी असावधानी के कारण वह गाँव की और बहुओं से पीछे रह गई थी जिसके कारण अब उसे इतनी मुसीबत झेलनी पड़ रही है। फिर उसी चट्टान के पास लौटकर उसने पिरूल के उस छोटे पुलिन्दे को सिर पर रख लिया और टेढ़े-मेढ़े मार्ग से तेज कदमों से दूसरी पहाड़ी की ओर बढ़ने लगी। किन्तु मन-ही-मन डर रही थी कि इस ओर भी कहीं दोखुटिया न मिल जाए इसलिए उसने पिरूल की कुछ पत्तियों को अपनी आँखों के आगे तक खींच लिया जिससे कोई उसे पहचान न सके।

अगले नाले तक मार्ग समतल था, फिर चढ़ाई आरम्भ होती थी। उस नाले में पानी के गिरने के शब्द को ही सुनकर उसे भय लगने लगा। वह कई बार घास और लकड़ी लेने इस नाले के पास आई है लेकिन उसे तब पानी के कल-कल निनाद से कोई भय न लगता था। लेकिन आज इसे पार करने में उसका हृदय काँप उठा। नाला बड़ी-बड़ी गोलाकार काली शिलाओं के बीच से उतरकर रिंगाले[1] के कुंजों को सींचता हुआ झरने के आकार में होकर फिर उलटी गुफा जैसी चट्टान पर उतरता है। चट्टान पर निरन्तर पानी के गिरने से गहरी झील बन गई है। यह झील एक प्राकृतिक बावली-सी केवल बीस हाथ लम्बी और आठ-दस हाथ चौड़ी है, लेकिन गहरी काफी है। गाँववाले इसे 'पूरी पूजी हरौ'[2] कहते थे, किन्तु जब से

---

१. जंगली बांस। २. परीपूजन हृद।

गाँव की पाँच औरतों ने एक साथ इसमें कूदकर आत्महत्या कर ली है, यह 'पंचवेणियाताल'[1] ही कहलाती है। उन मृत बहुओं की प्रेतात्माएँ परियों का रूप धारण करके अब भी कभी-कभी इस झील के किनारे खेलती दिखाई देती हैं—ऐसी व्यर्थ-सी बातें गाँव के लोगों में प्रचलित हैं। मधुली को इस बात पर तनिक भी विश्वास न था। लेकिन आज पानी का वही कल-कल शब्द उसे उन परियों के संलाप सा ज्ञात होने लगा।

सिर पर गठरी लिए मधुली एक पेड़ के नीचे खड़ी हो गई कि कहीं कोई और स्त्री जंगल में काम करती दीख पड़े तो वह उससे नाले को पार करने में सहायता माँग सके, किन्तु दूर तक कोई न दीख पड़ा। अचानक ही अपने मायके के गाँव को देखकर मधुली को ध्यान आया कि क्यों न वहीं चला जाए। इस विचार के आते ही आँखों में आँसू भर आए। मन में अनेक तर्क उठे कि इस प्रकार ससुराल से भाग जाना ठीक न होगा। माता-पिता भी प्रसन्न न होंगे दोबारा ससुराल किस मुँह से लौटूँगी? लेकिन फिर अपने ही से वह तर्क करने लगी—"ससुराल जा भी कैसे सकती हूँ? इस स्थान से मायका दो मील होगा और ससुराल होगा पाँच मील। इस ओर मार्ग सीधा है, उतार ही उतार सामने है और उस ओर तीन मील की खड़ी चढ़ाई है। खाली हाथ ससुराल लौटकर झिड़कियाँ ही खानी हैं। दोखुटिया की बात कह दूँगी। नहीं, नहीं, उसकी बात कहने पर न जाने वे लोग क्या समझें! ससुरालवाले बड़े शक्की होते हैं। घर से निकाल ही न दें। प्रधान की बहू दो दिन दोखुटिए के साथ रहकर फिर भागकर लौट आई थी। उसे कहाँ शरण मिली? ससुराल में

१. पाँच बहनों का ताल।

ठौर न मिली। मायके से भी माँ-बाप ने कलंकिनी कहकर निकाल दिया। विवश होकर बेचारी अपने बाल कटाकर पिनाथ के मठ चली गई और 'माता'[1] बन गई।

मन में इसी प्रकार तर्क चलता रहा और पाँव अपना काम अनायास ही करते रहे। वह नदी की ओर अपने गाँव की पगडंडी में बढ़ती ही गई। नदी के बहते हुए पानी के बीच आर-पार जाने के लिए पड़ी ऊँची-ऊँची फटकनों पर पाँव रखकर उसने नदी भी पार कर ली। सामने प्रधान का घट[2] था। एक बड़े से पेड़ के तने को खोखला करके उसी के अन्दर होकर कूल का पानी निकालकर घट को चलाने का प्रबन्ध किया गया था। उसका रास्ता घट के आँगन से होकर जाता था। बचपन से ही वह इस घट के एक-एक पत्थर और इसकी छत की एक-एक बल्ली से परिचित है। आटा उड़-उड़ कर उन बल्लियों पर चिपक जाता था। दीवारें भी क्षण-क्षण में महीन आटे की परत से भर जाती थीं मानो तुषार से ढक गई हों, फिर वह उन दीवारों पर चिपके सफेद आटे में अपनी अंगुलियों से कभी कुछ लिख देती और कभी चित्रकारी-सी किया करती थी। उसकी बनाई हुई आकृतियाँ कुछ ही क्षणों में आटे की नई परत से अपने-आप मिट जाती थीं। कभी-कभी आटे की पर्त मोटी होते-होते एकाएक स्वतः ही दीवार पर से ऐसे फिसल पड़ती मानो वर्षा काल में कोई पहाड़ अचानक ही फिसल पड़ा हो।

काठ के पानी भरे खोखले 'प्रणाले' के नीचे लकड़ी की फितौड़ी[3] थी जो आज भी पानी के जोर से गिरने के कारण नाच रही थी और नित्य की भाँति 'फा फा फा फा' की जोर की आवाज

---

१. भक्तिन। २. पनचक्की। ३. चर्खी (टरबाइन)।

मथे हुए फेनिल जल के मध्य से निकलकर सारे घट की दीवारों को कँपा रही थी। मधुली उस मन्थन को देखने का लोभ संवरण न कर सकी और मुँह के सामने आए पिरूल के पत्तों को हटाकर उस जलमय गह्वर को, जिसमें फितौड़ी नाच रही थी, ललचाई आँखों से देखने लगी।

तभी किसी ने पुकारा—"मधू, तू कभरिण ऐछि ? मैं कणा खबर लै नी दी ? लगोड़ दिणा पड़ाल् कै बैर ?[1]"

मधुली आँचल खींच झट प्रधान के चरणों पर ढौक[2] देकर अपनी आर्द्र आँखों और बहती हुई नाक को पोंछती बिना कुछ उत्तर दिए आगे बढ़ गई।

उसकी लम्बी साँस और बहती हुई नाक से उसके सर्दी से पीड़ित होने का अनुमान लगाकर बूढ़ा बोला—"अच्छा, सर्दी लगी है। यह पानी के बदलने से है। दो-चार दिन में ठीक हो जाएगी।"

मधुली ने अब भी कुछ न कहा और आगे बढ़ गई। उसके पाँव अपने बाल्यकालीन घर की ओर बढ़ते जा रहे थे। यद्यपि घट का 'फा फा फा' शब्द प्रतिक्षण उसके हृदय की धड़कन से ताल-मेल करता हुआ उससे कह रहा था—"तू अब भी लौट जा, अब भी लौट जा—लौट जा, लौट जा !"

घट के पास से कूल के किनारे थोड़ी ही दूर चलने पर उसके पिता का मकान सिर के सामने ही खड़ा-सा सम्मुख आ गया। घट का 'फा-फा' शब्द मन्द होता गया। सफेद कमेट से पुती दीवारों के

---

१. मधू, तू कब आ गई ? गाँव में तुम लोगों ने खबर भी न दी क्या इसीलिए कि ससुराल से लाए पकवानों में हिस्सा बटाना पड़ेगा ? २. चरण-स्पर्श।

मध्य मेहराबदार दरवाजा, दोनों ओर लकड़ी के छज्जे नीचे दोनों गोठमालों[1] में बिना किवाड़ों के आयताकार खुले स्थान, समूचा मकान ही सजीव-सा एकटक उसी की ओर देख रहा था। अब सीढ़ीदार खेत आ गए। खेतों में फाफर और ऊगल की अन्तिम फसल खड़ी हैं। उससे आगे आंगन से मिले-मिले खेत में पालक, लाई[2] उगी है। ज्यों-ज्यों मधुली दरवाजे की ओर खिचती गई त्यों-त्यों उसके हृदय की गति प्रबल होती गई। वह मकान मानो उसका बिछुड़ा प्रेमी हो। मुख्य दरवाजे से अन्दर घुसने का साहस उसे न हुआ। सिर पर रखे पिरूल के पूले को घास के लुटों[3] के निकट गिराना भी था। इसीलिए वह कराठ्यी[4] की ओर चली गई और सोंतर के ढेर में पूले को गिरा कर चुपचाप पिछले दरवाजे से होकर रसोईघर की ओर गई।

उसके पिता उस समय चाख[5] में एक चुटुके[6] पर बैठे चाय पी रहे थे। मधुली बाहर से आई थी। उस अंधियारे कमरे में पिता बैठे हैं, यह न देख सकी और उन्हीं की ओर दबे पाँव बढ़ती गई। पिता का ध्यान भी उस ओर न था। जब दोनों एक दूसरे के बिलकुल समीप पहुँच गए तो पिता ने चौंककर कहा—"अच्छा, आ गई मधू?"

मधुली क्षण भर स्तब्ध-सी खड़ी रही, फिर पिता के पैरों पर झुककर उन्हें ढोक दी।

"सौभाग्यवती रहो," पिता ने कहा—"सास-ससुर अच्छे हैं

---

१. नीचे की मंजिल। २. खूब चौड़े पत्तों का शाक विशेष। ३. हे-स्टैक्स। ४. पहाड़ी मकानों का पार्श्व भाग। ५. बाहरी कमरा। ६. घर का बुना कालीन।

तुम्हारे ? किसके साथ आई हो ?"

मधुली चुपचाप खड़ी रही, कुछ भी उत्तर न दिया।

पिता ने फिर पूछा—"मास्टर साहब आए हैं या प्रेमवल्लभ जी ?"

अब मधुली सिसक-सिसककर रोने लगी।

तभी रसोई के अंधियारे कमरे की ओर से हवा के झोंके की भाँति मधुली की माँ आई। अपने लहंगे के ऊपर चादर को ठीक से ओढ़ती हुई लड़की के माथे को चूमकर उसका ढोक स्वीकार करके पति के पास बैठ गई और फिर छोटे बच्चे की भाँति मधुली को अपने आँचल से पोंछ अपने घुटने पर बिठाकर बोली—"तू तो बड़ी दुबली हो गई, मधु। आज सुबह मुझे बार-बार हिचकियाँ आ रही थीं। मैं जान गई थी कि तूने ही मुझे याद किया होगा। कल तो मास्टर साहब के स्कूल में छुट्टी रही होगी, कल ही क्यों नहीं पहुँचाने को कहा तूने ?"

फिर मधुली के कपड़ों को देखकर बोली—"अरी, पगली, अभी तो तेरी शादी का लहंगा और गिमटी का पिछौड़ा[1] रखा ही होगा, उन्हें पहनकर क्यों नहीं आई ? अरे, हाथ और कान दोनों रीते हैं ? क्या हुआ मास्टर साहब को जो मेरी लड़की को ऐसी रीती-रीती भेजा है। जेवर अब न पहनेगी तो क्या बुढ़ापे में पहनेगी ?"

मधुली के पिता समधी या दामाद को बाहर आया समझ उठकर स्वागतार्थ मुख्य दरवाजे की ओर चले गए। उधर मधुली अपनी माँ की गोद में फफक-फफककर रोने लगी। माँ उसको सान्त्वना देने के लिए कभी उसकी ठुड्डी को सहलाती, कभी पीठ थपथपाती और कभी स्वयं आँसू बहाती। मधुली आ गई यही एक बात उसके

---

१. ओढ़नी।

मध्य मेट

..वधू

गो

ध्यान में थी। वह भागकर आई होगी यह बात तो वह सोच भी न सकती थी। ठाकुरों और बैरमुओं[1] में तो भागना और लुकना-छिपना होता ही रहता था। उनमें बहुविवाह और पुनर्विवाह की प्रथा भी थी। लड़की के ससुराल से मनमुटाव हो जाने पर पिता कुछ रुपया ससुरालियों को क्षतिपूर्ति के लिए देकर लड़की का दूसरी जगह विवाह कर देता था, लेकिन ब्राह्मण-परिवार मे लड़की भागकर मायके चली जाए तो दुबारा ससुराल आने ही न दिया जाता था।

बाहर देर तक अतिथि की प्रतीक्षा करके किसी को न पाकर मधुली के पिता ने अन्दर आकर पूछा—"अरी, बाहर तो कोई दीखता ही नहीं। तू आई किसके साथ ?"

लेकिन तुरन्त ही लड़की को सूखी-सूखी आकृति, फटे-मैले-कुचैले कपड़ों और उसके निरन्तर रोने से यह अनुमान लगाकर कि यह शायद ससुराल से भागकर आई है, पिता ने कहा—"बाप रे, तूने तो हमारी नाक कटा दी ! मालूम होता है तू भागकर आई है !"

"भागकर ! दैया री !" माँ ने लड़की को अपनी छाती से हटाते हुए कहा—"हाय, हमारा सिर फूट गया ! अब क्या होगा ?" मानो किसी अस्पर्श्य वस्तु को छू गई हो, इस भाँति माँ झटके के साथ उठ खड़ी हुई।

मधुली उसी स्थान पर दुबकी-सी और भी जोर से सिसकियाँ लेने लगी।

"क्या सचमुच भागकर आई है ?" पिता ने निकट आकर पूछा।

मधुली फिर भी चुप रही।

---

१. अद्विजों।

"अरी, बताती क्यों नहीं ?"

अब भी चुप रही मधुली।

"शैतान लड़की, क्यों चुपचाप बैठी है ? बता !" पिता ने क्रोध से कहा—"भागकर आई है या यहीं कहीं नजदीक जंगलों में काम करने ?"

"हाँ," मधुली ने जोर से रोते हुए कहा—"पाँव में दर्द था।"

माँ ने झुककर लड़की के पाँवों को सहलाते-सहलाते तलुओं का निरीक्षण करके स्वयं भी रोकर कहा—"हाय, कैसे बे-रहम लोग हैं ! रात को गरम पानी नहीं देते थे वे तुझे जो इतनी बड़ी बिवाइयाँ पड़ गईं। देखो तो, मधुली के पिता, इन बिवाइयों में तो छिपकलियाँ तक छिप सकती हैं। हाय राम, तू अब चलती-फिरती कैसे है ? इनके भरने में तो महीनों लग जाएँगे।"

"बकवास मत करो !" पिता ने कहा—"मुझे बात पूछने दो। अरी मधुली, आज कौन से जंगल में गई थी काम करने ?"

"परी पूजी हरौ," मधुली ने कुछ संयत होकर कहा।

पिता ने मन-ही-मन कुछ सोचकर कहा—"तब देर न कर, अभी तुझे किसी ने गाँव में घुसते नहीं देखा। फौरन वापस चली जा।"

"वापस ?" माँ ने लड़की को फिर छाती से लगाते हुए कहा—"क्या इस अँधेरी रात में ऐसे जाड़े में ऐसे दुखते पाँवों से यह लौट भी सकेगी ?"

"और कोई मार्ग ही नहीं।" पिता ने कहा।

अब जोर से सिसकने की बारी मधुली की माँ की थी। रोकर बोली, "हाय, लड़कियों को जन्म लेते ही मर जाना चाहिए। उन्हें न तो ससुराल में आराम मिलता है, न मायके में ठौर। बेचारी

न जाने कैसे कष्ट सहकर यहाँ तक आई, अब उलटे पाँव जाना भी होगा।"

कमरे का एक चक्कर लगाकर फिर अपने जूते पहनकर रोती हुई पत्नी और लड़की के समीप आकर बाप ने कहा—"चलो, चलो, मैं पहुँचा दूँगा।"

"तुम ?" पति की ओर अविश्वास से देखती हुई पत्नी बोली—"तुम कैसे पहुँचाओगे ? किस मुँह से जाओगे वहाँ ? कल स्कूल चले जाना समधी के, वहीं समझा देना। अब रात को बिना कुछ खाए, भूखी-प्यासी कहाँ जाएगी ? पानी गरम किए देती हूँ। पाँव के खुरंट भिगोकर उन्हें साफ करके नमक और तेल चुपड़ लेगी।"

"नहीं, नहीं, नहीं, !" पिता ने कहा—"इसे जैसी यह आई है वैसी ही जाने दो। मैं समधी के घर के अन्दर न जाऊँगा। पास के नाले तक मधुली को पहुँचाकर वापस चला आऊँगा। उन लोगों को ज्ञात न होना चाहिए कि बहू भागकर मायके गई थी। यह कह देगी कि जंगल में देर हो गई थी। पाँव की पीड़ा के कारण चला नहीं गया था। चलो, बेटी चलो। तुम्हें तो जरा भी अकल नहीं !"

मधुली आज्ञाकारी बालिका की भाँति आँचल ठीक करके चलने को तैयार हो गई। उसका उत्साह देखकर माँ आधी हँसती और आधी रोती अपने आँसुओं को स्वयं पीती बोली—"पगली ! चाय तो पी ले। रास्ते में चबैने के लिए कुछ रख ले। पानी तो गरम है, घड़ी भर में पाँवों को परात में भिगोकर सहला तो ले।"

"ऐसे ही जाना ठीक होगा, माँ !" मधुली ने माँ को टोक देते हुए कहा—"बावज्यू[1] ठीक ही कहते हैं। देरी का कुछ बहाना बना दूँगी।

---

१. पिताजी।

वे लोग बुरे नहीं हैं ।"

पाँवों पर झुकी हुई लड़की का सिर सहलाते समय अचानक ही हाथ उसकी लटों में उलझ जाने से मधुली की माँ का हृदय कराह उठा । छः महीने पूर्व सन की जिन पतली-पतली गुथनियों से उसने ससुराल जाते समय मधुली की लटें बनाई थीं, वे गुथनियाँ अब भी उसी भाँति सिर पर लगी थीं । तत्काल ही माँ को यह विदित हो गया कि ससुराल में कार्य की अधिकता के कारण छः महीने में एक बार भी सिर के बाल खोलकर धोने का अवकाश नहीं मिला और उस पर लड़की कहती है कि वे लोग बुरे नहीं हैं ।

भावावेश में अपने विकृत होते होंठों को दाँतों से चबाकर दौड़कर चूल्हे से दूध का गिलास और गुड़ की डली लाकर देती हुई माँ ने कहा—"अच्छा, कुछ तो पेट में डाल ले । तू तो ऐसी ही उतावली है जैसे तेरे पिता ।"

फिर किंचित् संयत होकर मन की अशांति को कम करने के हेतु माँ ने कहा—"क्या सिर धोने का अवसर भी तुझे नहीं मिलता वहाँ ?"

मधुली की आँखें लज्जा से झुक गईं । दो घूँट दूध पीकर उसने धीरे से कहा—"माँ, सचमुच वहाँ काम बहुत है । तड़के उठकर नहाने की रीति वहाँ नहीं है । उस समय हाथ-मुँह धोकर ही जंगल जाना होता है ।"

"दिन में या तीज-त्यौहार को तो समय मिलता होगा ?" माँ ने प्रश्न किया ।

मधुली ने कहा—"दिन में तो और भी अधिक काम रहता है, माँ, छुट्टी के दिन कपड़े-लत्ते धोने रहते हैं । लेकिन सच पूछो तो,

माँ, यह वेणी तो मुझे तेरी याद दिलाती रहती है। कितने प्रेम से कैसी महीन-महीन सैंकड़ों लटें बनाकर तूने मेरे सिर में बालों का सुन्दर ऊनी जाल-सा बुन दिया है। मैं इसे एक बार खोलकर फिर क्या ऐसी सुन्दरता से दुबारा बुन पाऊँगी ? इसीलिए समूचे सिर को गुथनियों सहित धो लेती हूँ।"

अविरल अश्रुधारा के बीच सिसकती हुई माँ ने कहा—"बेटी, ससुराल में यही हाल मेरा भी था। गृहस्थी जमते-जमते जमती है। काम से न डरना चाहिए। मैं भी तेरी नानी की गुँथी वेणियों को महीनों न खोलती थी। इस घर में भी क्या कम काम था ! जा फिर, जा, बावज्यू खड़े हैं…"

कहते-कहते माँ रुक गई। वह कहना चाहती थी कि अपने बाल्यकाल में ससुराल की परेशानियों से व्याकुल होकर वह भी दो बार पंचवेणियों के ताल में आत्मघात करने गई थी, लेकिन वहाँ पहुँचकर साहस खोकर लौट आई थी। लेकिन फिर यह सोचकर कि लड़की के सम्मुख अपने मन का भेद खोलने का यह उचित अवसर नहीं है, चुप हो गई।

तभी मधुली के पिता ने आतुरता से कहा—"चलो फिर, चलो।"

आठ

दो घंटे रात बीतने पर मधुली ससुराल के निकट पहुँच गई। नदी के किनारे क्षण भर रुककर उसके पिता ने कहा—"मैं अब यहीं से लौट जाऊँगा। वह रहा तुम्हारा घर।"

तुम्हारा घर? मधुली ने मन-ही-मन इन दो शब्दों को दोहराया। विवाह के दिन पालकी ढोनेवालों ने भी इसी स्थान से उस मकान को दिखाकर उससे कहा था—"वह है तुम्हारा घर!" तब वह समझी थी कि इतना बड़ा घरोंदा अब उसे खेलने को मिल गया। गाँव के सूच्याकार लुटों[1] को देखकर उसे अपने खिलौने समझकर वह अपने अधिकार पर मन-ही-मन गर्व कर उठी थी।

दो ही मास में उन दो शब्दों का दूसरा ही रूप उसे दीख पड़ा। गाँव की और बहुओं से 'तुम्हारा घर' शब्दों को सुनकर उसे जान

१. मंदिर की भाँति बने तीस-पैंतीस फुट ऊँचे सूखी घास के ढेर।

पड़ने लगा कि वे शब्द उसका उपहास करने के लिए उपयोग किए जा रहे हैं। वहाँ तो सब पराया ही पराया था—अपना कुछ भी नहीं। प्रेमबल्लभ, जिसे वह अपना कह सकती थी, परिवार के अन्य सब सदस्यों से भी अधिक विलग और पराया लगता था।

अब अपने ही पिता द्वारा इस क्षण उन दो शब्दों को सुनकर एक नए ही सत्य ने मानो उसकी आँखें खोल दीं कि यही तो उसका घर है, अन्यथा इतनी रात उसके पिता उसे यहाँ तक धकेल कर फेंक जाने के लिए विवश न होते।

"चुप क्यों हो ?" पिता ने पूछा—"अब जाओ, सीधे घर जाकर नित्य की भाँति काम-काज में लग जाना। किसी के मारने-धमकाने पर मुँह न खोलना। घर के किवाड़ बन्द हो गए हों तो लुटे में, पयाल के पूलों से अपने को खूब ढँककर रात काट लेना। सवेरा होते ही बिना आडंबर के काम पर जुट जाना।"

मधुली को अब भी डर लग रहा था। दोखुटिया घर के आस-पास उसी की ताक में कहीं छिपा न हो। उसने रास्ते में अपने पिता से दिन की उस घटना का जिक्र करना चाहा था, किन्तु साहस न जुटा पाई। इस समय भी अवसर था। वह कह सकती थी कि उसे दोखुटिए से डर लगता है। प्रसंग छिड़ने पर पूरी बात कहने में संकोच न होता। लेकिन वह चुपचाप खड़ी रही। फिर दो बूँद आँसू बहाकर पिता के पैर छूकर आगे बढ़ गई।

नदी पार करके जब मधुली के पिता अपने घर लौटते समय श्यामलाल की दुकान की ओर बढ़े, तो उन्होंने छिलुके के प्रकाश में तीन व्यक्तियों को अपनी ही ओर आते देखा। मशाल के उस तेज उजाले में अपने समधी को पहचानने में उन्हें देर न लगी। किन्तु

उनके सम्मुख जाना उचित न समझा और वह लौटकर फिर नदी की गोलमटोल चट्टानों के पीछे दुबककर बैठ गए।

आगंतुक शेरसिंह घटवार, मास्टर जयदत्त और हरदत्त काका ही थे, जो अब श्यामलाल बनिए के यहाँ टिके हुए डॉक्टर शर्मा को डरा-धमकाकर लौट रहे थे। मधुली के पिता उत्सुकता से उनके नदी में उतरने की प्रतीक्षा करते रहे। जब वे लोग नदी पार करके पन-चक्की के पास होकर मकान की ओर बढ़ गए, तो उन्होंने चैन की साँस ली कि अब मधुली को जाड़े की रात पयाल के लुटे के अन्दर न बितानी पड़ेगी। समधी के लिए तो मकान के किवाड़ खोले ही जाएँगे।

मधुली पहले तो पयाल के लुटे की ओर बढ़ी। वहाँ चूहों की खड़-खड़ के कारण उसे भय लगने लगा। थोड़ी देर साँस रोके पयाल को इधर-उधर करके घोंसला-सा बनाकर उसी में बैठ गई, किन्तु चूहों का उत्पात बन्द न हुआ। मकान के सब दरवाजे बन्द थे। प्रेमबल्लभ के कमरे की बन्द खिड़की के छेदों से थोड़ा-सा प्रकाश बाहर निकल रहा था। शायद वह मिट्टी के तेल की ढिबरी जलाकर पढ़ रहा था। कहीं किसी के बाहर निकलने की आशा न दीखती थी। रात उसी पयाल के घोंसले में बिताने के इरादे से मधुली ने दोनों कानों को अपने फटे पिछौड़े से बाँध लिया कि चूहों की खड़-खड़ाहट सुनाई न दे। वह आँखें बन्द किए सोने का उपक्रम करने लगी।

तभी एक बड़ा-सा चूहा उसके सिर पर गिरा और उसकी गोद में उतर आया। हड़बड़ाकर वह उठ बैठी और घोंसले से बाहर निकल गई। उस हड़बड़ाहट में पयाल का एक तिनका काँटे की भाँति

उसकी दुखती बिवाई में खड़ा घुस गया। तिलमिलाकर वह पयाल से दूर जा हटो। दो-चार और तिनके उन बिवाइयों में उलझ गए। लंगड़ाती हुई वह जब मकान के बन्द दरवाजे की ओर बढ़ी तो उसी समय पटांगरा के किनारे छिलुके का प्रकाश दिखाई दिया और दो व्यक्तियों की आकृतियाँ मकान की ओर आती दीख पड़ीं। मधुली ने मुँह फेर लिया।

प्रकाश धीरे-धीरे मकान के पास आ गया और मकान की दीवारें दरवाजे, खिड़कियाँ स्पष्ट दीखने लगे। मधुली अपनी छोटी होती काली छाया की ओर काँपती हुई देखती रही। उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बह रही थी। अपनी छाया के साथ उसने एक और काली छाया को भी छोटो होते देखा। वह पानी का एक खाली घड़ा था जो सीढ़ियों पर रखा था। शायद दोपहर से उसके आगमन की प्रतीक्षा में उसे वहाँ पर रखा गया था।

आगन्तुकों की बातचीत से मधुली ने पता लगा लिया कि उनमें से एक उसके ससुर हैं और दूसरे हरदत्त काका। उनके निकट आते ही वह सिमटकर सीढ़ियों पर बैठ गई। पाँव में चुभे हुए पयाल बड़ा दर्द कर रहे थे।

"अरी, आ गई तू ? कब आई ?" जयदत्त ने पूछा।

हरदत्त काका ने कहा—"बड़ा परेशान किया !" मधुली के चेहरे की ओर मशाल घुमाकर यह देखना चाहा कि वह कहीं चोट खाकर तो नहीं आई।

आँसुओं की अविरल धारा को हाथ से छिपाते हुए मधुली जोर से सिसकने लगी और हरदत्त काका के पाँवों पर अपना सिर रख दिया।

"हुआ क्या ?" हरदत्त काका ने उसे उठाते हुए पूछा। तभी

मधुली का दुखता पाँव बड़ी जोर से थर्रा उठा। उसका हाथ बिवाइयों की ओर अनायास ही बढ़ गया। वह अपनी विवाइयों को दिखाना नहीं चाहती थी। वह तो उस समय क्षमा माँगना चाहती थी, किन्तु पाँव का दर्द असह्य हो चुका था।

हरदत्त काका ने मशाल को पाँव की ओर बढ़ा दिया। बिवाइयों से टपकता हुआ काला रक्त सीढ़ी के पत्थरों को चित्रित-सा कर रहा था। रक्त से भीगे पयाल के तिनके तूलिका का काम कर रहे थे।

"अरी छोकरी, इतना कष्ट सहा! पहले क्यों नहीं बताया?"

हरदत्त काका ने पयाल के तिनकों में से एक को झटके से निकालकर कहा—"ऐसी शरम भी क्या! मालूम होता है बिवाइयाँ विषिया[1] गई हैं। तभी कोस भर चलने में तू ने दिन बिता दिया।"

"थी कहाँ?" जयदत्त ने पूछा—"हमें तो रास्ते में नहीं मिली। तेरा घास का गट्ठर तक तो हम ले आए। तू कहाँ रह गई थी?"

मधुली ने कुछ भी उत्तर न दिया, ससुर के पाँवों पर माथा टेक दिया। वह मुख से कहना चाहती थी: 'मुझे क्षमा कर दो, अब से ऐसा अपराध न होगा।' किन्तु सिसकियों के कारण कुछ कह न पाई।

"जरा कनगड़ा[2] तो ले आओ, मास्टर," हरदत्त काका ने कहा—"ऐसी तरकीब से इन तिनकों को निकाल दूँगा कि इसे पता भी न चलेगा। मैं जानता हूँ इन बिवाइयों को छू भर देने से कितना दर्द होता है। फिर जरा इसे गर्म पानी दे देना। चुपड़ने को गरम तेल और नमक

१. मवाद भर जाना। २. पाँव में गड़े काँटे आदि निकालने की चिमटी।

भी दे देना । मूक पशु सी बेचारी शर्म के मारे तुम लोगों से कुछ कह भी नहीं पाती है ।"

तभी मकान का दरवाजा खुला । अपनी लाल-लाल उनींदी आँखें मलती, छितराये बाल और अस्त-व्यस्त वस्त्र पहने मधुली की सास दहलीज पर आ खड़ी हुई ।

"ले आए महारानी साहबा को !" मुँह बिचकाकर वह बोली—"बड़ी कृपा की जो पधारीं ! अब क्या पूजा हो रही है देवीजी की ?"

जयदत्त को पत्नी का व्यंग्य किंचित् भी न भाया । उसने उसे हौले से अन्दर जाने का संकेत करके कहा—"जरा मेरा कलमदान तो देखना । उसमें पीछे के खाने में कनगड़ा रखा होगा । प्रेमबल्लभ से कहना पानी गरम कर दे । मुझे भी हाथ-पाँव धोने हैं ।"

पत्नी पति के हाथ को हटाती हुई धृष्टतापूर्वक बोली—"पानी क्या इसका बाप लाता ! घर में एक बूँद पानी नहीं है । जो कुछ था रोटी-साग बनाने में खतम हो गया ।"

जयदत्त हतबुद्धि-सा पत्नी की ओर देखता रह गया । हरदत्त काका ने अपनी अजीब पैनी दृष्टि से उसकी ओर देखा मानो मानव जीवन के अपने परीक्षित अनुभव को दोहराना चाहा, जिसे वह कई बार मास्टर से कह चुके हैं कि दूसरी शादी की औरत मर्द के काबू से बाहर हो जाती है ।

मधुली ने तत्काल अपने पिछौड़े से पाँव का टखना पोंछ डाला । एक हाथ से हरदत्त काका के हाथ से छिलुके की मशाल उठाई, दूसरे से खाली घड़े को और चुपचाप आँगन से नीचे उतरकर पानी लाने चली गई ।

हरदत्त काका कहना चाहते थे : अरे, मैं ले आऊँगा, और

जयदत्त स्वयं घड़ा छीनकर अपने हाथ में ले लेना चाहता था। लेकिन मधुली लंगड़ाती हुई झपाके के साथ आँगन से ओझल हो गई। उसका प्रत्येक काम ऐसी ही फुर्ती से होता था।

पानी लाने का काम तो पर्वत प्रदेश में औरतें ही करती हैं। मर्द गाँवों में कभी भी पानी भरते नहीं दीख पड़ते। अलबत्ता जिस घर में कोई स्त्री ही न हो, उस मनहूस घर में मर्दों को पानी भरना पड़ता है। पाँव उसका भले ही दुख रहा हो, लेकिन जैसे जीने के लिए साँस लेना अनिवार्य है, वैसे ही स्त्री के लिए काम में लगे रहना भी अनिवार्य है। यही शिक्षा उसे मिली है। ज्वर, पीड़ा या अन्य शारीरिक कष्ट उसमें बाधा नहीं डाल सकते। इसी परंपरागत भावना से प्रेरित होकर, बिना किसी आडम्बर या उत्साह के मधुली आज फिर काम में जुट गई। पानी लाई, चौका लगाया, ऊखल कूटा, आधी रात को पाँव धोए, फिर सोने को गई।

जयदत्त ने बेमन होकर भोजन किया। बहू से उसे सहानुभूति हो आई कि सास के कठोर वचनों का बिना प्रतिवाद दिए वह नित्य की भाँति काम करने लग गई। यद्यपि मधुली की उस कर्तव्यपरायणता में मायके की यात्रा से उत्पन्न थकावट को प्रकट न होने देने की गुप्त भावना काम कर रही थी, किन्तु जयदत्त के लिए वह कर्तव्य-परायणता का एक आदर्श था। वह खाना खाकर कुछ देर पलंग पर बैठे-बैठे इसी विषय में सोचता रहा। फिर घुटने मोड़कर अधलेटा-सा हो गया। कब उसे झपकी आ गई, यह स्वयं उसे ज्ञात न हुआ।

अगले दिन प्रातःकाल बहू के उठने पर उसने कहा—"बहू, आज जंगल न जाना। पशुओं को लुटे की सूखी घास खिला देंगे। तुम्हारे पाँव ठीक हो जाएँ तब दो-चार दिन बाद फिर नित्य की

भाँति जाती रहना।"

जयदत्त के सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार से उसकी पत्नी की क्रोधाग्नि भभक उठी। दो-चार दिन तक तो वह मन-ही-मन कुढ़ती रही, मुँह से कुछ न बोली। लेकिन जब एक दिन जयदत्त ने पत्नी के सामने ही प्रेमबल्लभ से कहा कि वह बहू के पाँव का नाप लेकर उसके लिए बाजार से कपड़े के जूते खरीद लाए, तो पत्नी ने रुग्रांसे होकर कहा—"प्रेमबल्लभ, हमारे लिए नहीं लाया कभी जूते !" बात प्रेम-बल्लभ को सम्बोधित करके पति को सुनाई जा रही थी।

पति ने शान्ति से कहा—"तुमने कभी माँगा भी न होगा। तब जूतों का चलन भी नहीं था। इस बेचारी के पाँव ऐसे फट गए हैं कि जूता न मंगाग्रोगी तो तुम्हारा ही काम ग्रटकेगा।"

पत्नी बोली—"हमारे मानो पाँव ही न थे या हम ग्रादमी ही न थे।"

"तुम तो व्यर्थ क्रोधित होती हो," पति ने कहा—"यह बेचारी तो ग्रपने पिता के साथ जब स्कूल में पढ़ने जाती थी, तब भी जूते पहनती थी। यहाँ बेचारी ने शरम के मारे कुछ नहीं कहा।"

"जब देखो बेचारी-बेचारी !" पत्नी ने पति के स्वर की हू-बहू नकल करके, नाक-मुँह बिगाड़कर कहा—"बेचारी का ग्रचार बनाग्रो। जब देखो तब तुम इसी का पक्ष लेते हो। समझ में नहीं ग्राता तुम्हारा इतना दुलार इस पर कैसे होने लगा है ! ग्रौर भी तो बच्चे हैं। उनके भी तो पाँव हैं। उनके लिए जूते नहीं मँगाते। इसी की रट लगाए हो !"

"चुप रहो !" पति ने रोष से कहा—"शरम नहीं ग्राती ?"

पति की फटकार सुनकर पत्नी दहाड़ मारकर रोने लगी।

बोली—"मेरा भाग्य फूट गया जो इस घर में सौतेले लड़के के होते मेरे बाप ने मुझे दे मारा। हाय, अब मैं कहाँ जाऊँ ?"

मास्टर जयदत्त ने पत्नी को रोते छोड़ झट दो रुपए निकालकर प्रेमबल्लभ को देकर जूते ले आने की आज्ञा दे दी। प्रेमबल्लभ प्रसन्नता से अपने जूते पहनकर आंगन से नीचे उतर गया। मधुली बरतन मल रही थी और सारा कांड भी तटस्थ-सी होकर देख रही थी। अब अधमले बर्तनों के ऊपर हाथ धो, कलसा लेकर पानी भरने नदी की ओर बढ़ गई। आगे बढ़कर दीवार की ओट से प्रेमबल्लभ को रुकने का संकेत करके बोली—"अजी, बड़े भोले हो ! इतनी जल्दी जूते लाने चल दिए !"

प्रेमबल्लभ ने इधर-उधर दृष्टि डाली और गम्भीरता से कहा—"क्यों ?"

मधुली सास की बोली की नकल करके बोली—"और भी तो बच्चे हैं, उनके भी तो पाँव हैं !" और फिर मुँह पर आँचल डालकर हँसने लगी।

प्रेमबल्लभ उस मंद-मंद हँसी का अर्थ न समझ सका। कुछ देर उस हँसी की मधुरता में खोया-खोया-सा रहा और फिर बोला—"जूते का नाप देने आई हो ? झटपट एक तिनके से नाप डालो।"

फिर झटपट एक तिनका उठाकर प्रेमबल्लभ ने अपने पाँव को नापकर मधुली को बताया कि नाप कैसे लेते हैं।

तिनके को मोड़-माड़कर कलसे के अन्दर डाल मधुली उसी प्रकार मुसकराकर बोली—"अजी, हमारा पाँव तो देखो। जूते को भी उसके सम्पर्क में आते संकोच होगा। बरफ के दिन तुम्हारा कोई फटा जुराब डाल लूंगी। क्यों बेकार जूता लाते हो—रुपए भी बरबाद

होंगे, सास भी नाराज होंगी।"

"लेकिन पिताजी ने जो कहा है।"

"उनसे कह देना कि बहू ने मना कर दिया।"

"कैसे कहूँगा ? मैं क्या कभी तुमसे बात करता हूँ ?"

"मत कहना। मैं कह दूँगी," खिलखिलाकर हँसते हुए मधुली ने कहा—"जाओ, लौट जाओ।"

"लेकिन अब लौटूँ किस बहाने ?" प्रेमबल्लभ ने बड़े असमंजस में पड़कर कहा—"वह न मालूम क्या समझें !"

मधुली उसकी घबराहट पर फिर हँस पड़ी। उसके लिए मानो सब कुछ सरल और सुगम था। कुछ देर पति की आँखों में आँखें गड़ाए बोली—"क्यों जी, किताबें रटनेवाले सब ऐसे ही सीधे-सादे और भोले होते हैं ? मेरे पिता, तुम और तुम्हारे पिता—सबकी आँखों में गऊ का-सा सीधापन दिखाई देता है। वह देखो आज्ञाकारी पुत्र के माथे पर पसीना आ गया कि पिता की आज्ञा की अवहेलना कैसे की जाए ! तरकीब मुझसे पूछो। पनचक्की में आटा पीसने दिया गया है। पिस गया होगा। उसे लेकर लौट जाओ।"

प्रेमबल्लभ हँस दिया। तभी कुछ खटका-सा होने पर मधुली अपनी स्वभावगत फुरती से छलांग मारती पानी भरने चल दी।

नौ

जूते तो मोल नहीं लिए, लेकिन इससे गृहस्वामिनी और उसके पति का मनमुटाव कम नहीं हुआ। मधुली के त्याग की भावना और समझदारी से पति और ससुर दोनों को उसके प्रति जो सहानुभूति हो गई थी, वह सास को असह्य थी। वह पति के प्रति अपने व्यंग्यबाण छोड़ना कभी न चूकती थी। गृह-कलह पहले भी उस परिवार में यदाकदा हो जाता था, किन्तु अब तो कोई बिरला ही दिन ऐसा होता था जब जयदत्त और उसकी पत्नी में कहा-सुनी न होती हो।

कुछ दिनों तक इसी प्रकार उस कुटम्ब के दिन कटते रहे। मधुली मन लगाकर काम करती रही। एक दिन अचानक ही उसके मायके के प्रधान की भेंट मास्टर जयदत्त से हो गई। दोनों कुछ सौदा खरीदने पास के गाँव की दूकान पर गए थे। प्रधान से जयदत्त को ज्ञात हुआ कि मधुली ससुराल से बिना पूछे मायके चली गई थी।

घड़ी भर वहाँ रहकर फिर उलटे पाँव लौट आई थी। जयदत्त को विश्वास न हुआ। कब, कहाँ, कैसे में ही बात टल गई। जयदत्त ने बूढ़े प्रधान की स्मृति की हँसी उड़ाते हुए उससे कहा—"जरूर तुमने कोई स्वप्न देखा होगा अथवा घट की घरघराहट और पिसान के उड़ते महीन-महीन बादलों से तुम्हें झपकी आ गई होगी, अन्यथा पिछले आठ मास से तो मधुली ने क्षण भर के लिए भी ससुराल से बाहर पाँव नहीं रखा। मायके वह अकेले जा भी कैसे सकती है! एक मास्टर की बहू और दूसरे मास्टर की कन्या—मार्ग में सभी लोग उसे पहचानते हैं।"

घर लौटने पर बूढ़े प्रधान की बात को मन-ही-मन सोचते हुए सहसा जयदत्त को ध्यान आया कि हो न हो उस रात जब वे लोग मधुली को ढूंढने श्यामलाल की दुकान तक गए थे, मधुली चुपचाप मायके हो आई होगी। प्रधान के बताए हुए दिन और समय का अनुमान लगाकर जयदत्त को अब पता चला कि शायद वह ठीक ही कह रहा हो। चट उठकर जयदत्त ने ऊखल कूटती हुई मधुली को पुकार कर कहा—"अरी बहू, आज वह तुम्हारे गाँव का प्रधान कह रहा था कि उसने एक दिन शाम को तुम्हें अपनी पनचक्की के पास से जाते देखा था।"

मधुली के हाथ का मूसल छूटते-छूटते बचा। क्षण भर में अपनी घबराहट पर विजय पाकर और संयत होकर उसने कहा—"वह बूढ़ा बड़ा गप्पी है। आप उसकी बातों पर विश्वास न कीजिएगा।"

"लेकिन वह तो कसम खाता था," भोले जयदत्त ने हँसकर कहा।

"तू है सत्य हरिश्चन्द्र की अवतार!" सास ने तत्काल बात काटकर कहा—"वह बूढ़ा भला क्यों झूठ बोलेगा! मैं तो उसी दिन

समझ गई थी कि तू मायके गई होगी। मैंने यही बात इन लोगों से भी कही थी। अब देखो, उस सयाने प्रधान को गप्पी बताती है।"

"तुम बेकार बीच में क्यों बोलती हो!" पति ने पत्नी को डांटते हुए कहा।

"मैं बेकार बोलती हूँ?" पत्नी रुआंसी-सी होकर बोली—"अब मेरी बातें तुम्हें बेकार ही तो लगेंगी। अच्छी लगेगी यह भगेड़ू, यह चूड़ैल! हाँ, हाँ, मैं खूब समझती हूँ।"

"बको मत!" जयदत्त ने कहा—"तुमसे कई बार कह दिया कि गाली मत बका करो!"

"गाली? सच बात कहती हूँ तो तुम्हें गाली लगती है। पूछ कर देख लो। इसी चूड़ैल को माँ की कसम खिलाकर देख लो, मेरी बात सच निकलेगी। यह जरूर भागकर मायके गई थी।"

"गई भी तो क्या हुआ?"

"ओ हो! कुछ नहीं हुआ! भागकर मायके गई—तुम्हारे लिए कुछ हुआ ही नहीं! तुम इसकी पूजा करो। मैं तो ब्राह्मण की बेटी हूँ—अब इसके हाथ का छुआ पानी भी नहीं पी सकती।"

"अब तक जो पी लिया है?" पति ने चुटकी लेकर कहा।

"अब तक?" पत्नी रोष में बोली—"सूतक भी तो तब लगता है जब मृत्यु की खबर कानों में पड़ती है। अब तक जो संदेह था, वह आज पक्का हो गया। अब न पीऊँगी।"

सचमुच अगले दिन से मधुली के हाथ का छुआ पानी पीना सास ने बन्द कर दिया।

अब घर में दो चूल्हे हो गए। सास अपने लिए एक कलसा पानी अलग ले आती, अपनी रोटी अलग बनाती। मधुली से बात

तक न करती। गाँव में भी यह खबर फैल गई कि मधुली उस शाम भागकर अपने मायके गई थी। मायके से आनेवाले व्यक्तियों द्वारा भी कभी इस बात की पुष्टि हो जाती और कभी इसका प्रतिवाद भी होता।

सर्दी बीतने पर मार्च का महीना आ गया। ससुराल की बहुएँ फिर नव वर्ष[1] के अवसर पर मायके जाने के लिए छटपटाने लगीं। मधुली ने भी प्रेमबल्लभ से आग्रह किया। प्रेमबल्लभ ने बात पिता के कानों तक पहुँचा दी। जयदत्त ने बिगड़कर कहा—"कदापि नहीं, मायके जाने की आदत बुरी है। उस शाम बहू मायके गई थी। समधी को वह बात बहुत खली है, उन्हें बड़ी ग्लानि है। मैंने उनसे पूछ लिया है। बहू इस साल यहीं रहेगी।"

यह जानकर कि मधुली वास्तव में छिपकर मायके गई थी प्रेम-बल्लभ का मन भी तिक्त हो गया। कई दिन तक वह मधुली से बोला तक नहीं। उसके अकारण क्रोध से मधुली का मन और भी क्षुब्ध हो गया। ज्यों-ज्यों चैत मास निकट आता उसके मन में एक टीस-सी उठती। वह पति, सास और ससुर से मधुर आश्वासन के शब्दों के लिए तरसती। किन्तु उसके काम के प्रति किसी का ध्यान न था। अब तक तो वह केवल सास द्वारा ही तिरस्कृत थी, अब पति और ससुर ने भी उसका तिरस्कार करना आरंभ कर दिया।

इसी बीच उसे ज्वर और खाँसी ने धर दबाया। जुकाम के बाद तो उसका अंग-अंग शिथिल हो गया। उठने-बैठने में भी चक्कर आने लगे। दिन प्रतिदिन तीव्र होती धूप में थोड़ी देर खड़े रहना

---

१. चैत्र संक्रांति।

कठिन हो जाता। लेकिन घर का काम नित्य की भाँति होता रहा। किसी ने भी उसकी शारीरिक अवस्था की ओर ध्यान न दिया।

उसी मास के अंत में प्रेमबल्लभ वार्षिक परीक्षा देने शहर चला गया। दो सप्ताह बाद जब घर लौटा तो उसने नया ही वातावरण देखा। उसके माँ-बाप में फिर से पहले की भाँति मेल हो गया। अकेला रह गया तो वह और उसकी पत्नी। एक दिन जयदत्त ने स्पष्ट ही कह दिया—"प्रेमबल्लभ, अब तुम सयाने हो। जितना मैं तुम्हें पढ़ा सकता था मैंने पढ़ा दिया, अब अपना काम-काज संभालो। तुम्हारी माँ तुम्हारी बहू के साथ रहना नहीं चाहती। मैं पंचों को बुलाकर जमीन का बंटवारा कर देना चाहता हूँ।"

प्रेमबल्लभ चुपचाप सुनता रहा। बहू के बारे में पति-पत्नी में फिर कलह हो गई। इस बार सास ने दहलीज में बैठकर हाथ को सीढ़ियों पर पटककर कसम खाई—"इस घर में या तो मैं ही रहूँगी या यह चुड़ैल!" फिर अन्दर जाकर बहू के थोड़े से सामान को बटोर-कर बाहर रखते हुए कहा—"सौतेले लड़के को पाला-पोसा, बड़ा किया, पढ़ाया, लेकिन वही आज कहता है कि मेरी पत्नी की कमाई खाते हो।"

प्रेमबल्लभ ने चौंककर कहा—"मैंने तो ऐसा नहीं कहा।"

"कहा कैसे नहीं!" उसकी सौतेली माँ बोली—"सारे गाँव में तो तू कहता फिरता है। इन बच्चों तक को सिखाता है। अगर तेरी बहू को हमें खिलाने की सामर्थ्य है तो वह स्वयं अपना प्रबन्ध क्यों नहीं कर लेती? जमीन का बंटवारा किया जाता है। अब अलग रहकर कमाओ और खाओ। मैं तो बड़े मुन्ने की शादी कर लूँगी। मुझसे तुम्हारा यह अभिमान नहीं सहा जाता कि तुम लोग

मुझे खिला रहे हो।"

यह सब झूठ था। प्रेमबल्लभ सुनकर चुप रहा। बहू ने सामान की गठरी बनाई और गोठ[1] में उसे एक कोने में रख दिया। वह भी कुछ न बोली।

जयदत्त ने भी आज अपनी पत्नी का पक्ष लिया और प्रेमबल्लभ से कहा—"आज से तुम गोठ के इस खंड में रहा करो। मुझसे रोज-रोज का यह गृह-कलह नहीं सहा जाता।"

मधुली उस दिन जंगल में काम करने नहीं गई। उसके शरीर में भी इतना बल न था कि वह पहाड़ की चढ़ाई चढ़कर घास ला सकती। मधुली की इस अकर्मण्यता पर प्रेमबल्लभ को और भी अधिक खीझ हुई। आज गोठ में रात बितानी पड़ेगी, यह विचार उसके लिए असह्य था।

पिता के स्कूल चले जाने पर वह चुपचाप उठा। अपने जूते पहने और गत वर्ष वार्षिक परीक्षा में प्रथम उत्तीर्ण होने पर जो पॉकेट ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी पुरस्कार में मिली थी, उसे लेकर वह श्यामलाल की दुकान की ओर चला गया। वहाँ उसे अपने और भी सहपाठी मिल गए। होली के दिन थे। बच्चे सब आपस में भद्दे मजाक कर रहे थे।

एक लड़के ने कहा—"अरे प्रेमबल्लभ, आजकल भावज कहाँ है? उसे दोखुटिए से बचाकर रखना।"

"हाँ, हाँ," दूसरे ने कहा—"एक दिन तो हरदत्त काका कहते थे बेचारी भागी-भागी फिरी। एक दोखुटिया उसे खेदता रहा।"

---

१. नीचे की मंजिल।

प्रेमबल्लभ को ऐसी बातें बिलकुल पसन्द नहीं थीं। वह अपने बलिष्ठ हाथों और घूंसों से ही उनकी दिल्लगी का जवाब देता रहा।

"हरदत्त काका झूठ थोड़े ही कहते हैं," दूसरा लड़का बोला—"उन्होंने अब तक किसी को बताया नहीं था। परसों होली में अतर[1] का दम लगाए थे, तब बक गए। चतरख के नौले के पास दोखुटिया मधु भाभी की ताक में बैठा रहा। बेचारी भागकर मायके गई, वहाँ से किसी को साथ लेकर रात ससुराल लौटी।"

प्रेमबल्लभ चुपचाप सुनता रहा। सोचा, मधुली ने आज तक यह बात उससे छिपाई। ऐसी चतुर कुलटा के साथ उसे रहने को कहा जा रहा है। नहीं, वह नहीं रहेगा। उस रात की घटना को याद करके, जब हरदत्त काका ने डॉक्टर शर्मा को श्यामलाल की दुकान से भगाया था, उसे लड़कों की कही हुई बात पर पूरा विश्वास हो गया।

दुकान से लौटकर वह नदी के किनारे आ गया। थोड़ी देर उन चौड़े पत्थरों पर लेटा आकाश को ताकता रहा। फिर बाजार जाकर अखबारवाले से परीक्षा-फल के आने की तिथि पूछने का निश्चय करके सड़क छोड़ नदी के किनारे-किनारे तीन मील दूर कस्बे की ओर बढ़ गया।

वहाँ जाकर उसने वह काम किया जो आज तक कभी सोचा भी न था। क्षण भर में बिना सोचे-समझे उस डिक्शनरी को उसने तीन रुपए में बेच दिया। फिर एक बस में बैठकर रेल के स्टेशन का टिकट खरीद लिया। रात को रेलवे स्टेशन से मुरादाबाद की

---

१. चरस, सुलफा।

ओर जानेवाली गाड़ी में बैठकर वह अगले दिन मुरादाबाद पहुँच गया। पहाड़ के बाहर इस शहर में उसे अपने गाँव की एक लड़की के घर शरण मिलने की आशा थी।

वह लड़की गाँव के ठाकुर परिवार की थी। गाँव के रिश्ते में वह लड़की उसकी दीदी लगती थी। उस अनपढ़ दीदी की ओर से बचपन में उसने अपने अपरिचित जीजा को पत्र लिखे थे। जीजा किसी दफ्तर में काम करते थे।

दस

दिन भर भटकने के बाद जब शाम को भूखा-प्यासा प्रेमबल्लभ उसके घर को ढूँढ़ पाया, तो उसे ऐसा लगा मानो उसकी सभी समस्याएँ हल हो गई हों। उस नए वातावरण में दीदी के मीठे स्वागत भरे शब्दों से प्रेमबल्लभ को न अपने पिता की याद रही, न पत्नी की। दो दिन ऐसे ही बीत गए। प्रेमबल्लभ ने अपनी यात्रा का उद्देश्य नौकरी बताया—यह नहीं बताया कि वह भागकर आया है।

दीदी प्रेमबल्लभ को नौकरी दिलाने का प्रयत्न करने लगी। नौकरी तो जल्दी मिल न सकी, लेकिन पड़ोस में बच्चों को घंटे दो घंटे पढ़ाने का काम उसे मिल गया। परीक्षा-फल निकलने पर जब लोगों को ज्ञात हुआ कि वह प्रथम श्रेणी में पास हुआ है, तो उसे दो ट्यूशन और मिल गईं।

शरीर उसका बचपन से ही खेती का काम करने से बड़ा हृष्ट-पुष्ट

था। वह अपने एक प्रिय-शिष्य के पिता की कृपा से थानेदारी की प्रतियोगिता में सम्मिलित हो गया और चुन भी लिया गया । अब तो वह जीजान से अपने प्रशिक्षण में जुट गया। घर के विषय में सोचना भी उसने छोड़ दिया।

उधर मधुली जब शाम को खेतों से लौटी तो नित्य की भाँति ऊखल कूटने में जुट गई। परिवार के छोटे-छोटे बच्चे भी उस शाम उसकी ओर एक नई शत्रुतापूर्ण दृष्टि से देख रहे थे। सास ने उसके रसोई में बर्तन मलने की प्रतीक्षा न की और स्वयं चौका-बासन करने लगी। मधुली ने कुछ ध्यान न दिया । वह प्रेमबल्लभ से दो बात करने का अवसर ढूँढने का प्रयत्न कर रही थी। आज वह उसे स्पष्ट बता देना चाहती थी कि वह उस दिन क्यों घर न आकर जंगल से मायके की ओर भाग गई थी। उसका अनुमान था कि सच बात जान लेने और उसकी विवशता से परिचित होने पर शायद प्रेम-बल्लभ उसे क्षमा कर देगा, और फिर पहले की भाँति स्नेह से बात-चीत करने लग जाएगा।

जब से प्रेमबल्लभ ने मधुली के मायके तक बिना पूछे दौड़ लगाने की बात सुनी थी उससे कतराया रहता था। गत सप्ताह अवकाश निकालकर जब कभी किसी काम के बहाने मधुली उसके पास से गुजरती थी कि दो शब्द उससे कहे, दृष्टि-विनिमय हो अथवा भाव-भंगी के प्रदर्शन मात्र से ही वे एक दूसरे के दुख-सुख से अवगत हों, तो उसके निकट आते ही प्रेमबल्लभ अपनी मुद्रा कठोर कर लेता, मधुली की ओर से आँखें फेर लेता अथवा देखकर भी उसकी आँखों से आँखें न मिलाता । मधुली मन मसोसकर रह जाती । वह सांत्वना के लिए पति की स्नेहिल सहानुभूतिपूर्ण चितवन की

प्यासी रहती, लेकिन प्रेमबल्लभ उसे एक चतुर कुलटा समझकर अपनी खीझ को स्वयं पीकर मन को कड़वा किए रहता। वह कड़वाहट मधुली के सामीप्य के समय अपनी सम्पूर्ण तिक्तता सहित उसके मुख पर झलकने लगती।

आज जब चावल पछोड़कर रात के ग्यारह बजे के लगभग मधुली रोटी के लिए चौके में गई तो उसने देखा कि चौका लग गया है। छीके या पटोरे[1] में भी रोटी या साग जैसी कोई वस्तु नहीं रखी गई, तो सहसा ही उसे आज सास की धमकी का स्मरण हो आया। अब उसे उस तथ्य का पता लगा कि जो बात सास ने क्रोधवश कही थी, वह धमकी मात्र न थी, कार्य रूप में भी परिणत हो गई थी। शायद उन दोनों के लिए खाना बना ही नहीं। यह सत्य इतनी देर बाद उसकी समझ में आया।

वह प्रेमबल्लभ के कमरे की ओर गई। वहाँ अँधेरा था। किवाड़ खोलकर अंदर जाने की उसकी हिम्मत नहीं हुई। आज तक कभी रात को वह अकेले उस कमरे में नहीं गई थी।

वह गोठ की ओर बढ़ी। हाथ की मशाल ठीक की और किवाड़ खोलकर सीलन और मकड़ी के जालों से भरे उस उजाड़ कमरे के कोने-कोने को देखा। यहीं आज भूखे रात बितानी होगी। बाहर लुटे पर जाकर वह पयाल के चार पूले ले आई। एक कोना साफ करके वहीं जमीन पर पयाल बिछाया। उसी पर चादर फैला दी और दूसरी चादर तथा फटा कम्बल ओढ़ने को रखा। पर उस बिस्तर में सोने को जी न चाहा। बड़ी देर घुटनों के बल मशाल से

---

१. रसोई के पास भोजन रखने की अलमारी।

खेलती-सी पयाल की गन्ध लेती रही।

फिर हिम्मत करके लुकाई लेकर दोबारा प्रेमबल्लभ के कमरे में गई। इस बार उसने जोर से किवाड़ खोले। धड़कते हृदय से आँखें नीची किए पति के पलंग तक आई। दृष्टि तो भूमि पर ही लगी थी, किन्तु कान उत्कंठा से पति के शब्दों को सुनने के लिए आतुर थे। नन्हे से हृदय में अभिसार की-सी उथल-पुथल मच रही थी। उसने अपनी स्वभावगत चंचल वृत्ति के वशीभूत हो चारपाई के किनारे तक पहुँचकर उसे हलका-सा धक्का दिया। फिर भी कोई शब्द न हुआ। धीरे से चारपाई के कोने पर बैठ गई कि शायद प्रेमबल्लभ स्वयं ही उसके आंचल को उठाकर उसके नत मुख को अपने हाथों से अनावृत करके उससे चुपचाप बातें करेगा। बगल के कमरे में सास-ससुर जगे होंगे। उनके सामने भला जोर से बातें कैसे हो सकती हैं!

दो क्षण प्रेमबल्लभ के बोलने की प्रतीक्षा करके उसने कहा—"बड़े निठुर हो! बोलते तक नहीं।" और छिलुके को अंगीठी पर रखने के बहाने सिरहाने की ओर बढ़ी। पलंग की ओर संकोचवश अब भी न देखकर अंगीठी में छिलुके की जलती लपटों की ओर देखने लगी।

फिर भी उत्तर न मिलने पर दृष्टि उठाकर पलंग पर देखा। वह खाली था। कमरे में दृष्टि दौड़ाई। सारा कमरा खाली था। अलमारी के पीछे, अंगीठी के अन्दर चारों कोनों को देखा, कहीं कुछ न था। क्षण भर में आँखें कमरे के सारे सामान पर दौड़ गईं। कुछ क्यों नहीं, वहाँ तो सब वस्तुएँ यथास्थान रखी थीं—नहीं था तो केवल प्रेमबल्लभ और आले में रखे रहनेवाले उसके जूते।

"वह भाग गए ! माँ-बाप ने अब तक उनकी खबर तक नहीं ली ?" कुछ क्षण तो वह कमरे की प्रत्येक वस्तु को छूती, देखती और हाथ से उठाकर यथास्थान रखती पागल-सी 'भाग-गए ! भाग-गए !' कहती रही, फिर पछाड़ खाकर गिर पड़ी ।

उसकी सास छिपे-छिपे शाम से ही उसकी गति-विधि का निरीक्षण कर रही थी । नन्हे को तो आज इतनी रात गए भी नींद नहीं आई थी । वह माँ के लिए संवाददाता संजय का काम कर रहा था । बार-बार अपने कमरें को बन्द किवाड़ों से झाँककर देख रहा था कि भावज ने रोटी बनाई कि नहीं, वह माँ से आटा, साग, नमक और तेल माँगने आती है कि नहीं ? कहीं अभी कूटे चावलों को ही लेकर भात तो नहीं बनाने लगी । जब नन्हे ने बताया कि भाभी प्रेमबल्लभ के कमरे में गई है, तो माँ बेटे दोनों का कुतूहल बढ़ गया ।

नन्हे ने अपनी आँखों के अतिरिक्त कानों का उपयोग किया और मधुली ने जो दो-चार वाक्य उस कमरे में प्रेमबल्लभ को उपस्थित जानकर कहे थे, उन्हीं को सुनकर माँ से कहा—"दोनों बात कर रहे हैं ।"

"अच्छा, बात कर रहे हैं !" माँ ने कहा, और मुँह ढाँककर सोये हुए जयदत्त को सुनाकर कहा—"मैं तो कह रही थी कि अभी आ जाएगा । गाँव में होलियों में गप मारने या स्वांग देखने गया होगा ।"

जयदत्त ने सुन लिया, कहा कुछ नहीं । आत्मिक संतोष कर लिया कि लड़का घर से भागकर चला नहीं गया, लौट आया है ।

छिलुके का प्रकाश जब तक उस कमरे से बाहर आता रहा,

नन्हे कुछ और सुनने की प्रतीक्षा करता रहा। लेकिन मधुली के गिरने के शब्द के बाद देर तक केवल छिलुके की लकड़ियों के जलने का चट-चट शब्द ही यदाकदा सुन पड़ता था, फिर वह भी बन्द हो गया। सारा कमरा अंधकारमय हो गया। नन्हे को किवाड़ पर खड़े-खड़े अंधेरे में डर लगने लगा। माँ को जगाकर उसने कहा—"माँ, वे तो शायद सो गए। आज क्या वे भूखे ही रहेंगे ?"

बच्चे का हाथ झटककर माँ ने कहा—"चल हट, सो जा। जो कुछ करते हैं करने दे। क्या वे बच्चे हैं ?"

इतने परिश्रम से, इतनी देर तक जागकर नन्हे ने माँ की जो सेवा की थी, उसका यह पुरस्कार पाकर उसे बड़ी निराशा हुई। वह सिकुड़ा-सा अपनी रजाई के अन्दर बैठा इसका कारण सोचता रहा। फिर माँ को भावज की एक और महान गलती बताने के अभिप्राय से सोत्साह बोला—"माँ, तुझे जाड़ा नहीं लग रहा है ? मैं बताऊँ, जाड़ा क्यों हो रहा है ? भावज ने अन्दर आते समय खोली[1] के द्वार खोले थे। अभी उन्हें बंद नहीं किया और अपने आप सो गई है। माँ, कोई चोर अंदर आ सकता है, बाघ या भालू भी आ सकता है।"

झट अपने बिस्तर से उचककर बैठती हुई मधुली की सास चिल्लाकर बोली—"अब रात को खोली के किवाड़ बन्द करने के लिए मुझे ही उठना पड़ेगा !"

लेकिन किसी ने उत्तर न दिया। जयदत्त ने मुँह ढांके ही कहा—"जाओ, तुम ही बन्द कर दो। क्यों हल्ला करती हो ?" पति

१. दोमंजिले पर आने का मुख्य द्वार।

का यह उदार भाव देखकर पत्नी का हृदय मन-ही-मन रो उठा । ऐसा जी चाहा कि तकिए को उन पर दे मारे। लेकिन उनकी बात सुनकर भी अनसुनी करके वह अधखुले कपाटों से मुँह निकालकर चिल्लाई—"निर्लज्ज कहीं के ! सारा परिवार जाग रहा है और वहाँ हँसी-ठट्ठा हो रहा है । किवाड़ बन्द करने की भी सुधि नहीं है।"

किन्तु कोई उत्तर न मिला। अब पति की आज्ञा पालन करना अनिवार्य समझकर सास का क्रोध आपे से बाहर हो गया। न जाने पास में छिलुके रखे हैं कि नहीं। दियासलाई भी ढूंढनी पड़ेगी। छिलुके बालकर इस सनसनाती हवा में खोली तक जाना उसके लिए कम दुष्कर कार्य न था। अपने वाक्-तरकस से अन्तिम अचूक बाण छोड़ती वह गरजी—"बहू, सुनती है ? मर गई क्या ? खोली बन्द करने के लिए घंटे भर से पुकार रही हूँ।"

इस गर्जना के बाद भी किसी ने कोई उत्तर न दिया । सारे मकान को कंपायमान करनेवाले इस भयंकर गर्जन से दो छोटे बच्चे जाग गए और रोने लगे । भय से उनका बुरा हाल था । मूर्छित पड़ी मधुली के कानों में वह चिल्लपों भी मशक राग बनकर रह गई। उसकी सास को रोते बच्चों को शांत करने में पति की आज्ञा की अवहेलना करने का अवसर मिल गया।

पत्नी को बच्चों को चुमकाराने में व्यस्त देख जयदत्त उठे और सिगड़ी के पास जाकर छिलुके बालकर खोली को स्वयं ही बन्द करने चल दिए। फिर अपने बिस्तर की ओर बढ़ते समय विचार आया कि इतनी गर्जना के बाद भी प्रेमबल्लभ नहीं उठा । कमरे में वे दोनों हैं भी कि नहीं ? खांसकर प्रेमबल्लभ के कमरे की ओर जाते हुए

बाहर से ही पुकारा—"बड़े बेखबर सो रहे हो !" कमरे के किवाड़ खुले देखकर उनकी शंका और प्रबल हो गई । कमरे के अन्दर उन्होंने जब झाँका तो देखा कि जमीन पर बहू औंधी पड़ी है । इस जाड़े में बिना कुछ ओढ़े उसे नींद आ गई है । पास आकर देखा, उसकी आँखें तो खुली हैं । अब वह आतंकित होकर चीख पड़े—"प्रेम की माँ, यहाँ आओ, बहू को कुछ हो गया है ।"

ग्यारह

पुलिस ट्रेनिंग स्कूल में भर्ती होने के तुरन्त बाद ही प्रेमबल्लभ को रुपयों की आवश्यकता पड़ गई। ठकुराइन दीदी के घर पर रहकर जो कुछ रुपया गत साल भर में वह चार ट्यूशनों से कमा पाया था, वह उन्हीं के पास जमा करता रहता था। उन लोगों की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी, इसलिए दीदी ने उसमें से सवा सौ रुपए खर्च कर दिये थे। शेष तीन सौ से किसी प्रकार छः मास तक काम निकल गया। जब गाड़ी आगे न चली तो प्रेमबल्लभ ने विवश होकर अपने पिता को पत्र लिखा कि अब तक वह नौकरी की तलाश में रहा, अब शीघ्र नौकरी लग जाने की आशा है। इस समय उसे रुपयों की बड़ी आवश्यकता है। दो ढाई सौ रुपए उसे तत्काल मिल जायें तो काम बन सकता है। अपनी ट्रेनिंग की बात प्रेमबल्लभ ने जान-बूझकर नहीं लिखी। वह देखना चाहता था कि पिता का हृदय

उसके प्रति बदला कि नहीं ?

कई सप्ताह तक कोई उत्तर न मिला। दीदी के पते पर पिता का पोस्टकार्ड आया, तो प्रेमबल्लभ की अनुपस्थिति में अपने पति से उसे पढ़वाकर जब उसे मालूम हुआ कि प्रेमबल्लभ ने घर से रुपए मँगवाए थे, तो तत्काल उसके धरोहर के सब रुपए ही उसे वापस नहीं कर दिए, ऋण लेकर कुछ और रुपए भी दे दिए। पिता का पत्र प्रेम-बल्लभ को महीनों बाद पढ़ने को दिया गया। उसमें जो कुछ लिखा था उसका सारांश था—"अमुक का लड़का घर से भागकर गया था, अब प्रति मास पचीस रुपए घर भेजता है। अमुक पलटन में भर्ती हुआ, निरक्षर होते हुए भी बीस रुपये अपनी माँ और पच्चीस रुपए अपने पिता को प्रति मास भिजवा रहा है। तुम पढ़-लिखकर भी निठल्ले बैठे हो! ऐसे मूर्ख हो कि अपने माँ-बाप से उलटे रुपए की माँग कर रहे हो। वह भी दस-बीस नहीं, ढाई सौ। कमाकर रख गए थे क्या, जो झट भेज देने को लिख रहे हो ? अभी तो तुम्हारे विवाह में जो साढ़े तीन सौ रुपए कर्ज लिए थे, वही मैं नहीं दे पाया हूँ, और रुपए कहाँ से लाऊँ ?"

प्रेमबल्लभ उस पत्र की वाक्य-रचना और उस में उल्लिखित व्यक्तियों के नाम से ही समझ गया कि वे उदाहरण उसकी विमाता को प्रिय थे, उसी ने पिता के सामने बैठकर पत्र का उत्तर लिखवाया होगा।

प्रशिक्षण के उपरांत जब प्रेमबल्लभ को वेतन मिलने लगा, तो साल भर तो उसे दीदी द्वारा लिए गए ऋण से मुक्त होने में लगा। फिर प्रति मास कुछ न कुछ खर्च लगा ही रहता। आने-जानेवालों के बैठने के लिए कुर्सियाँ, मेज, बर्तन, कपड़े, घोड़ा और साइकिल—

सभी वस्तुएँ एक से एक अधिक आवश्यक लगती थीं। तीन वर्ष तक एक पाई भी बचाना कठिन हो गया। इस बीच कुछ रुपया बचाकर घर भेजने की बार-बार इच्छा होते हुए भी वह कुछ भी न भेज पाया। उस वर्ष बसंत डाकू को जीवित पकड़ लाने पर उसे सौ रुपए पुरस्कार मिला। इसमें से कुछ तो पुलिस क्लब में साथियों को दावत देने में उड़ गया। पचास रुपए बचाकर उसने तत्काल अपने पिता के नाम मनीआर्डर कर दिया। कूपन पर पहाड़ी में लिख दिया—"श्री चरणों में नमस्कार। इजा को भी प्रणाम। पुलिस में नौकरी कर रहा हूँ। शर्मिन्दा हूँ कि अब तक आपकी सहायता न कर सका। भविष्य में थोड़ा-बहुत निरंतर भेजने का प्रबन्ध होगा। घर के समाचार लिखिएगा। भाई-बहनों को शुभाशीष।"

इस बार जल्दी ही उत्तर आया। प्रेमबल्लभ उन दिनों घोड़े से गिर पड़ने के कारण चारपाई पर पड़ा थाने का काम करता था। बाएँ हाथ में चोट थी। पिता ने परिवार की दीन दशा का वर्णन करके लिखा था—"पाँच साल बाद पचास रुपय भेज दिए, बड़ी कृपा की। पुलिस की नौकरी में यह कमाई? हमारा अहोभाग्य है कि तुझ-सा सपूत हमें मिला। भौनिया लोहार का लड़का किसी होटल में बर्तन मलता है। दिल्ली में है। वह भी साल में सौ सवा सौ रुपए भेजता है। घर पर उसके भाई ने उसी की कमाई से बड़ा-सा मकान बना लिया है। दो छोटे भाइयों की शादियाँ कर दी हैं।"

इस बार भी पोस्टकार्ड हिन्दी में था और थाने की डाक में ही आया था। प्रेमबल्लभ को पढ़ते ही क्रोध आ गया कि शायद सिपाहियों ने भी पढ़ा होगा। यह सोचकर प्रेमबल्लभ ने फाड़कर उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिए। घर के समाचार के प्रति उसकी उत्सुकता में

मधुली के विषय में भी जानने की इच्छा काम कर रही थी। उसकी याद आते ही वह एकाएक ध्यानमग्न हो जाता था । उस चचंल बालिका के छोटे-से शरीर में कितना बल और कैसी सहनशीलता थी। बुद्धि उसकी कैसी प्रखर थी । नदी की ओर जानेवाले मार्ग में उससे दो चार बार जो थोड़ी-सी बातचीत हुई थी, उसका एक-एक शब्द प्रेमबल्लभ को याद था । लेकिन पिता ने उसका कोई समाचार नहीं दिया ।

तीन मास बाद एक और पोस्टकार्ड आया । लिखा था—"बैल मर गया है । बिना नया बैल लिए खेती का काम नहीं चल सकता। बड़ी बहू तो काम में मन नहीं लगाती । भागकर बार-बार मायके चली जाती है । तुम्हारी माँ ने जिद की, इसलिए बड़े मुन्ने की शादी करनी पड़ी । पाँच सौ रुपए उधार लिये । दमकाभिड़ के सब खेत गिरवी रखकर रुपया उधार मिला । ठकुराइन से ज्ञात हुआ कि तुम थानेदार हो गए हो । यह बात हमसे क्यों छिपाई ? अब तुरन्त ही नौ सौ रुपए का प्रबन्ध करके भेज दोगे, तो मेरी नाक बच जाएगी। खेती के अन्न से अब बारह प्राणियों का पेट भरना कठिन है । उस पर भी आधे खेत बन्धक पड़े रहे, तो मोल लेकर खाना पड़ेगा । बेटा, इस दरिद्रता से मुक्ति पाने के लिए हमने तुम्हें पढ़ा-लिखाकर बड़ा किया । इस समय हमारे काम न आओगे तो फिर तुम्हारी थानेदारी हमारे किस काम की !"

उस दिन प्रेमबल्लभ की कुल पूँजी मिलाकर नौ रुपए भी न थी। हाथ में जो चोट आई थी उसके एक्सरे और प्लास्टर का ही बिल एक सौ पैंतीस रुपये था, जिसे सरकारी खजाने से पाने का आवेदन वह महीनों पहले लिख चुका था । लेकिन रुपया अब तक न मिला

था ।

कुछ दिनों बाद तो फिर प्रति मास ऐसे ही एक-से-एक करुण पत्र आने लगे । डाकिए के आने के समय अब प्रेमबल्लभ को और काम छोड़कर स्वयं डाक लेने थाने में रहना पड़ता कि कोई सिपाही उन पत्रों को पढ़कर उसके परिवार की दयनीयता का अतिरंजित चित्रण करके थाने में अनुशासनहीनता न फैला दे । पत्रों का उत्तर देना तो उसने बिलकुल छोड़ दिया । अगले मास वेतन के सवा सौ रुपये मिलते ही उसने पैंतीस रुपए का मनीआर्डर करके कूपन में लिखा—"श्री चरणों में प्रणाम । मैं प्रति मास पैंतीस रुपए से अधिक न भेज पाऊँगा । विवश हूँ । आप अपनी बात लिखें तो कम-से-कम बन्द लिफाफे में पत्र भेजने का कष्ट करें ।" फिर पुनश्च कर के लिखा था : "सभी लोगों का समाचार दें । कौन किस कक्षा में पढ़ता है । आप किस पाठशाला में हैं ।"

दस दिन के बाद मनीआर्डर लौट आया । गाँव के डाकिए ने फार्म के कोने पर लिखा था—'पानेवाले को रुपया लेने से इनकार है । भेजनेवाले को वापस ।'

दो दिन बाद एक और पोस्टकार्ड आ गया । खूब घसीट में पहाड़ी में लिखा था—"हमारी दरिद्रता का उपहास करने में तुझे लज्जा नहीं आती, लज्जा आती है तो मेरा पोस्टकार्ड पाने में । मेरे पास इतने रुपए कहाँ हैं कि तेरी लाज बचाने के लिए मैं लिफाफे में पन्द्रह पैसे के टिकट खर्च कर सकूँ । तुझसे रुपये मिलने की आशा में अब तक साहूकार को किस भाँति सान्त्वना देता रहा । अब तूने भेजे भी तो पैंतीस रुपए । इससे क्या बेड़ा पार होता ! ब्याज और गाँठ खोलाई के ही सवा सौ देने हैं । मेरी लाज रखनी है तो सवा

सौ फौरन भेज देना और अगली फसल तक हजार का प्रबन्ध करना। मैं जानता हूँ, एक थानेदार के लिए बाएँ हाथ का खेल है । अगर तेरी इच्छा मेरी सहायता करने की है ही नहीं, तो दूसरी बात है। तब ये टुकड़े फेंककर मेरा अपमान न करना।''

फिर पुनश्च कर लिखा : ''रुपए अगर चैत तक न मिले तो फिर न मैं तेरा बाप, न तू मेरा पुत्र।''

बारह

पुलिस इंस्पेक्टर जनरल के मुआइने के बाद प्रेमबल्लभ को अपने बड़े मुंशी को थाने का काम सौंपकर पुलिस के नव-संगठित पुलिस दल के प्रमुख अधिकारी के पास पहुँचने की आज्ञा मिल गई। इस दल का काम था महिलाओं के अपहरण और कुत्सित व्यवसाय से सम्बंधित अपराधियों की गिरफ्तारी।

यह जानकर प्रेमबल्लभ ने चैन की साँस ली कि दल का कार्य-क्षेत्र पहाड़ी क्षेत्र तक ही सीमित न था। वह सोचने लगा कि वह घर से दूर किसी जिले में एकान्त स्थान में नियुक्ति के लिए प्रार्थना करेगा। दल के प्रमुख कुछ वर्ष पूर्व उसी तराई के जिले में रह चुके थे। प्रेमबल्लभ को जानते थे। उसकी ईमानदारी और कर्त्तव्यनिष्ठा की बात पहले ही वहाँ पहुँच चुकी थी। दो दिन की यात्रा के बाद जब प्रेमबल्लभ उनसे मिला तो वह बड़े तपाक से मिले। उनकी

सहृदयता से प्रेमबल्लभ की आशा बंधी । खूब खुलकर बातें होने लगीं । इधर-उधर की बातें पूछने के बाद उन्होंने प्रेमबल्लभ को बता दिया कि वह उस दल में सेक्शन अफसर नियुक्त किया गया है । उसके अधीन तीन थानेदार और चालीस गुप्तचर काम करेंगे ।

प्रेमबल्लभ बार-बार मन-ही-मन प्रार्थना कर रहा था कि उसकी नियुक्ति पहाड़ी क्षेत्रों में न हो । इसलिए वह तत्काल न तो प्रसन्नता प्रकट कर सका और न उस अधिकारी को अपनी इस पदोन्नति के लिए धन्यवाद ही दे सका ।

अधिकारी ने कहा—"तुम्हारा कार्यक्षेत्र होगा पर्वत प्रदेश का समूचा इलाका ।"

"ओफ़ !" एक लम्बी साँस लेकर प्रेमबल्लभ ने कहा—"मुझे और कहीं भेज दीजिए । वहाँ मुझसे काम न होगा ।"

"काम ?" अधिकारी ने कहा—"काम करेंगे सिपाही और थानेदार, आप तो उनके काम की देखरेख करेंगे ।"

"मुझे किसी मैदानी जिले में भेज दीजिए," प्रेमबल्लभ ने बुझे स्वर में कहा ।

अधिकारी बोला—"और जिलों में सेक्शन अफसर नियुक्त नहीं हैं, केवल थानेदार हैं ।"

"पहाड़ पर ? तब तो मुझे यह पदोन्नति नहीं चाहिए," प्रेमबल्लभ ने उदास भाव से कहा

"नहीं चाहिए ?" अधिकारी साश्चर्य बोला—"लोग अपनी तरक्की के लिए जीवन की बाजी लगा देते हैं, दूसरे के गले पर छुरी फेर देते हैं । तुम्हें तरक्की निरायास मिल रही है, इसलिए उसकी कद्र नहीं कर रहे हो ।"

प्रेमबल्लभ ने नतमस्तक होकर कहा—"मैं अपने को उस योग्य नहीं समझता। मुझे थानेदार ही रहने दीजिए और किसी दूर जिले में भेज दीजिए।"

'मिस्टर प्रेमबल्लभ," अधिकारी ने मेज पर मुक्का मारकर कहा—"कैसी मूर्खता की बातें करते हो! ऐसा अवसर जीवन में केवल एक बार आता है, तुम उसे ठुकरा रहे हो।"

"मैं विवश हूँ," प्रेमबल्लभ ने कहा—"वहाँ नहीं जाना चाहता।"

अब तो अधिकारी ने और भी उत्तेजित होकर कहा—"और सब जिलों में नियुक्तियाँ तीन मास पहले हो गई हैं। काम आरंभ हो गया है। पहाड़ के जिलों में किसी अफसर के न होने से कुछ गिरफ्तारी नहीं हो पाई, इसलिए पहाड़ के लिए तुम्हारी विषेश रूप से नियुक्ति हुई है। तुम्हें तुरन्त जाकर वहाँ काम संभालना है।"

प्रेमबल्लभ ने दोनों हाथों की कुहनियाँ मेज पर टेक दीं। बहुत ही थके व्यक्ति की भाँति माथे को हथेली पर रख लिया। सोचने लगा: हाय, यह क्या हो गया! मैं किस जाल में फंस गया! अब कैसे मुक्ति मिलेगी? वह भूल गया कि वह अपने अफसर के सम्मुख इस प्रकार एक अपराधी बालक-सा सिसक रहा है।

उसके मूर्खतापूर्ण व्यवहार और दुराग्रह से अधिकारी का क्रोध मन-ही-मन बढ़ता जा रहा था। लेकिन इस विराग का वास्तविक कारण जान लेने की उत्सुकता ने उस क्रोध को तिरोहित कर दिया। वह प्रेमबल्लभ की उस ध्यानमग्न व्यथित मुद्रा का कुछ क्षण पुलिस की स्वभावगत पैनी दृष्टि से अध्ययन करके क्रोध का उपक्रम करते हुए गरजा—"मैंने किसी भी पुलिस अधिकारी को इतना कायर नहीं पाया।"

प्रेमबल्लभ उसी प्रकार माथे को हथेलियों पर टिकाए सुनता रहा।

अधिकारी ने दूसरी चाल चली। गरजकर बोला—"जानते हो, थानेदार, तुम एक बड़े पुलिस अफसर से बात कर रहे हो ! सीधे खड़े रहो—अटेंशन !"

प्रेमबल्लभ लड़खड़ाते हुए क्षण भर में कठोर होकर तनकर खड़ा हो गया। सचमुच उसे अपनी उस अस्त-व्यस्त दशा पर लज्जा हो आई।

अधिकारी ने आज्ञा दी—"मेरे हैड-क्लर्क के पास चले जाओ और अभी नए पद पर कार्यभार-ग्रहण की लिखित सूचना दो। और पहाड़ी इलाके के सब मामलों के कागज लेकर दो बजे मुझसे मिलो।"

"लेकिन, सर...लेकिन, सर......" प्रेमबल्लभ हकलाया।

"मैं कुछ नहीं सुनना चाहता," अधिकारी ने कहा—"आज्ञा का पालन करना ही होगा।"

प्रेमबल्लभ ने भी कह दिया—"मैं इस नियुक्ति पर जाने के बजाए त्याग-पत्र देना ठीक समझता हूँ।"

अधिकारी ने गरजकर कहा—"पुलिस विभाग में आज्ञा का उल्लंघन करना पदच्युत होने अथवा नौकरी से निकाले जाने पर ही समाप्त नहीं होता, अवज्ञा का दंड—जेल की सजा भी भुगतनी होती है। अब तुम्हारी जो कुछ समझ में आए करो।"

दस मिनिट के अन्दर कायरता, अनुशासनहीनता, अवज्ञा आदि का अपराधी होकर मन मारे यंत्रचालित-सा प्रेमबल्लभ दफ्तर में गया। चार्ज लेने की रिपोर्ट लिखी और उन आठ-दस मिसलों को

लेकर दो बजे तक का समय काटने के लिए वहीं बरामदे में उन्हें उलटने-पलटने लगा । उन कागजों को छूने को भी उसका जी न चाहता था । मन होता था कि कहीं दूर भागकर एक नया ही जीवन आरंभ करे । एक-एक कागज पर आँखें चलाकर उनमें लिखे गए वाक्यों और अक्षरों को पढ़ता हुआ भी प्रेमबल्लभ मानों अपने अक्षर-ज्ञान और विवेक को खो बैठा । उन मिसलों का विषय क्या है, उनमें लिखा क्या है—यह बार-बार पढ़कर भी उसके मस्तिष्क के नीचे न उतर पाता था । मिसलों को बाँधकर उसने अपनी मेज पर रख दिया । प्रातःकाल से अब तक की घटनाओं पर आद्योपांत मन-ही-मन मनन करने लगा :

यदि वह सचमुच कायर नहीं है, तो पहाड़ पर काम करने से क्यों डर रहा है ? अच्छा, अगर वह अपने अफसर की आज्ञा न माने तो क्या होगा ! उसे जेल ही तो होगी । गत सात वर्षों में सैकड़ों व्यक्तियों को जेल भेजकर स्वयं जेल का रसास्वादन कर लेना भी क्या कायरता ही कहलाएगी ? वहाँ मृत्यु तो होगी नहीं । अगर हो ही जाए तो……

तभी दफ्तर के एक क्लर्क ने उसके पास आकर कहा—"साहब, थोड़ी देर के लिए डॉक्टर शर्मा की हत्या की मिसल चाहिए ।"

हत्या ?—प्रेमबल्लभ के सुप्त मस्तिष्क ने सोचा—क्या हत्या का अपराध भी मुझ पर आरोपित किया जा रहा है ? पूछा—"हत्या ? किस की हत्या ?"

"डॉक्टर शर्मा की हत्या," क्लर्क ने कहा—"भानकोट गाँव का मुकदमा ।"

"भानकोट ?" प्रेमबल्लभ की चेतना मानो लौट आई । यह नाम उसने कहीं सुना था......ओह, वह तो उसके गाँव के निकट की पाठशाला का नाम है। कभी उसके पिता वहाँ अध्यापक थे । वह साश्चर्य क्लर्क के मुँह की ओर ताकता रहा। पास में रखी हुई फाइलों के अस्तित्व को तो वह उस क्षण बिलकुल भूल गया।

क्लर्क ने सकुचाते हुए उन कागजों को उलट-पलटकर उस विशेष फाइल को प्रेमबल्लभ को दिखाते हुए कहा—"यदि आपने देख लिया हो तो मैं ले जाऊँ ?"

प्रेमबल्लभ ने उस फाइल का शीर्षक देखा । लिखा था : "डॉक्टर मिठाईलाल शर्मा की हत्या का मामला, स्थान भानकोट, कर्नाली की घाटी, जिला........"

क्लर्क के हाथ से फाइल को झपटकर लेते हुए प्रेमबल्लभ ने कहा, "मैं इसे पढ़कर अभी आपको देता हूँ।"

क्लर्क इस नए अफसर के अनोखे व्यवहार पर कि अभी-अभी तो इसने पूरी फाइल पढ़कर रख दी थी, अब फिर क्या देखना है, अचरज करता हुआ वापिस चला गया। उसके दो ही मिनिट बाद प्रेमबल्लभ की सारी चेतना द्विगुणित वेग से लौट आई। उसे कुछ ही मिनिट में न केवल उस मिसलों के अभियुक्तों के नाम ही याद हो गए, बल्कि वह यह भी जान गया कि किस मामले में कहाँ तक छानबीन हो चुकी है और अब आगे क्या करना है।

क्लर्क को बुलाकर उसने वे सब कागज उसे वापिस कर दिए। स्वयं एक महान उत्तरदायित्व से विमुक्त हो जाने की-सी स्फूर्तिमय भावना के वशीभूत होकर वह कुर्सी पर बैठा कल्पना के रथ पर चढ़ा स्वप्न देखने लगा—डॉक्टर शर्मा के संभावित हत्यारे के विषय में...

भानकोट के पास डॉक्टर शर्मा का शव मिला। स्कूल के छात्रों ने उसे सबसे पहले देखा था। शरीर पर अनेक घाव थे, एक कान पिचककर जबड़े पर चिपका था। कन्धा उखड़ा हुआ और हँसुली की हड्डी टूटी मिली थी। हत्यारे का पता न चला। गाँववाले कुछ बताते नहीं थे। स्वप्न की इतनी सब बातें तो आँखों के सम्मुख उन कागजों में लिखी घटनाओं के आधार पर चित्रित हो गईं, और अब उससे आगे की घटनाएँ भी वह देखने लगा।

स्वप्न में मृत शव उसी काले, नाटे से होमियोपैथिक डॉक्टर शर्मा का था, जो चमड़े का थैला लिए दवाइयाँ बेचने के लिए पहाड़ी गाँवों में घूमा करता था। उस दुष्ट के हाथ तो दवा की गोलियाँ निकालने और बाँटने का काम करते थे, किन्तु दृष्टि किसी अबोध शैलैया के चेहरे पर गड़ी रहती थी। उन बाज की-सी आँखों में भयास्पद वासना टपकती थी। स्वप्न में वह देखने लगा कि हत्यारे को पकड़ने के लिए उसी का दल भेजा गया। खूब जोरों से जाँच-पड़ताल हुई। उसके अधीन काम करनेवाले थानेदार ने अपने तीनों सिपाहियों के साथ दिन भर परिश्रम करके साँझ को एक व्यक्ति को लाकर डाक बंगले में उसके सम्मुख प्रस्तुत किया। वह उस समय डाक में देर से आए हुए समाचार-पत्र को देखने में तल्लीन था कि उस अंक में उसका नाम भी सरकारी गजट में छपा होगा। उसी को ढूँढने में उसने तत्काल आगंतुकों की ओर ध्यान नहीं दिया।

थानेदार ने उसकी मेज के निकट आ खट से बूट बजाकर उसका अभिवादन किया। सिपाही भी इसी आशा में खड़े रहे कि देखें कब साहब की दृष्टि मेज पर बिखरे उस महत्त्वपूर्ण कागज पर से उठकर उन पर पड़ती है और कब वह अभियुक्त को पकड़ लाने की सफलता

में साहब की शाबाशी प्राप्त करते हैं।

थानेदार ने कहा—"हुजूर, यह रहा डॉक्टर शर्मा का हत्यारा।"

अब उसने आँख उठाकर अपराधी की ओर देखा—अरे, वह तो उसके पिता जयदत्त हैं! वह अपने लड़के को इस उच्च पद पर देखकर गद्गद् हो उसे गले से लगाने के लिए आगे बढ़ते हैं। किन्तु सिपाही यह सोचकर कि अपराधी अफसर के पाँवों पर गिर पड़ना चाहता है, जयदत्त को ऐसा करने से बरबस रोक देते हैं।

"हथकड़ी खोल दो!" प्रेमबल्लभ कहता है—"तुम सब निरे मूर्ख हो! तुम्हारी अकर्मण्यता का इससे बड़ा और क्या प्रमाण है कि तुम स्कूल के इस अध्यापक को, जो गाँव के सबसे सज्जन और भोले व्यक्तियों में है, पकड़ लाए हो!"

ऐसा कहते ही हथकड़ी अपने आप खनककर टूट जाती है। एक बड़ा-सा हिमशृंग एक छोटे से मैले-कुचैले देवथान के टीले को प्रणाम करने के लिए झुक जाता है। षाष्टांग प्रणाम करनेवाला हिमशृंग है प्रेमबल्लभ, और छोटा-सा टीला है जयदत्त।

स्वप्न में फिर सब कुछ धुंधला पड़ जाता है। वह दृश्य बदल जाता है। उसके पिता पर हत्या का मुकदमा चल रहा है। छोटी अदालत से बड़ी और बड़ी से सेशन तक की पेशियाँ हो गई हैं। धन के अभाव में वह अपनी सफाई के लिए वकील नहीं कर पाए हैं। उनके ऊपर अभियोग सिद्ध हो गया है। उसने बड़ी कठिनाई से बचाकर जो सौ रुपए भेजे थे, वे वापस आ गए हैं, क्योंकि उसके पिता तो जेल में हैं। अब फाँसी के दंड की तैयारी है। हाईकोर्ट से इस दंड की पुष्टि होना शेष रह गया है। तभी उसकी नियुक्ति पहाड़ पर होती है। उसे ज्ञात होता है कि निरपराध होते हुए भी उन्हें फाँसी

मिलनेवाली है । बचाव का कोई उपाय नहीं । प्रेमबल्लभ दौड़-धूप में लग जाता है । अपनी मौलिक सूझ-बूझ से वह ठीक समय पर नाटकीय ढंग से असली हत्यारे को पकड़कर जयदत्त को छुड़ा लेता है……

दूर पुलिस लाइंस में बिगुल का शब्द सुनकर प्रेमबल्लभ कल्पना के स्वप्निल रथ से उतर आया । वही पुलिस दफ्तर का बरामदा, वही कुर्सी और सामने वही सरकारी दफ्तरों के भवन । लेकिन उसे सब कुछ एक नई ही अनोखी आभा से चमकता हुआ लगा, मानो वह गहरी निद्रा से जागकर उठा हो, मानो जीवन में पहली बार वास्तविकता का सुखद सौन्दर्य उसके हाथ लग गया । ऐसा दृष्टि और भाव का परिवर्तन हो गया ।

अब विचारधारा वास्तविकता की ओर चल पड़ी । वह सोचने लगा : पुलिस की नौकरी करके मैं क्यों मनुष्यत्व खो बैठा ? माँ-बाप, गाँव और परिवार के प्रति अपने कर्त्तव्य को मैंने क्यों भुला दिया ? बचपन की वे महत्त्वाकांक्षाएँ कि बड़ा होकर वह उद्धारक बनेगा, गाँव-वासियों के दुखमय जीवन में परिवर्तन लाएगा, उसके आविष्कार से दिन-रात बैल की तरह काम में जुटी रहनेवाली बहुओं को आराम मिलेगा, उसकी पानी उठानेवाली मशीन से नदी का पानी बिना हाथ से उलीचे ही खेतों को सींचेगा, उसका इंजन पर्वत-शृंगों से लकड़ी और घास उठाकर खलियानों में गिरा देगा, मीलों उबड़-खाबड़ मार्गों को पार करके इन वस्तुओं को सिर पर ढोने की आवश्यकता ही न रहेगी । लेकिन ये मन के मनसूबे मन-ही-मन में रह गये । उसने इन सात वर्षों में क्या किया—कमिश्नर, मजिस्ट्रेट और इन्स्पेक्टर के बंगलों के चक्कर लगाए, उनकी चाटुकारी की; चोर,

डाकू और बदमाश कहे जानेवालों को पकड़कर उनके चालान किए, मुकदमों की पैरवी की, गवाहों को बयान पढ़ाए और रटाए, और इस व्यस्तता में वह स्वजनों के प्रति अपना कर्त्तव्य भूल गया। उन सबको उसने विलग कर दिया। स्वयं क्या प्राप्त हुआ उसे ? कुछ नहीं। प्रजा-पीड़क व्यवस्था का वह एक अचेतन पुर्ज़ा बन गया। ग़रीबों को सतानेवाली पुलिस का नौकर और होता ही क्या है !

"हाँ, वह एक प्रजा-पीड़क ही तो है। कितने लोग भला इस विभाग में परोपकार या जनसेवा की भावना से आए हैं। मेरे ही गाँव के निकट डाक्टर शर्मा की इस हत्या के अपराध में न जाने कितने निरपराध ग्रामीण सताए जाएँगे। यदि मैंने इस काम को हाथ में न लिया तो किसे उन गरीब लोगों के प्रति सहानुभूति है ! सम्भव है यह वही डाक्टर शर्मा हो और गाँववालों ने, जैसा कि कहा गया है, किसी ग्रामीण बाला के प्रति किए गए दुर्व्यवहार के लिए उसे मार डाला हो। तब तो समस्या और भी जटिल हो जाएगी। गाँव की लड़कियों और बहुओं को पकड़ा जा सकता है। साधारण पुलिस के बर्बर कर्मचारियों को उन बालाओं को नहीं सौंपा जा सकता। यह काम इसीलिए मुझे ही अपने हाथ में लेना होगा। मैं पक्षपात का दोषी तो न बनूँगा। लेकिन उन अबोध ग्रामीण लोगों को, उन उपेक्षित और तिरस्कृत ग्राम-वधुओं को और अधिक लांछित होने से बचाकर न्याय सम्यक् रूप से जाँच का प्रबन्ध कराने का कर्त्तव्य मेरा ही होगा। मेरा पुलिस विभाग की नौकरी करना, इस समय उनकी रक्षा न कर पाया, तो फिर किस अर्थ का ! उनके लिए वह इसे त्याग भी देगा।

उसको यह सोचकर एकाएक ऐसा भास हुआ मानो अब तक

पुलिस विभाग में जो कुछ किया वह तो आनेवाले जीवन के लिए एक शिक्षणमात्र था। यह एक होनहार थी कि वह घर से भागा, पुलिस विभाग में भर्ती हुआ, अपराधों की अन्वीक्षा और दंडव्यवस्था से अभिज्ञ हुआ और इस दल में आ गया। इस सब में विधाता का ही हाथ था कि उसने पर्वत-प्रदेश के उन ग्रामीण लोगों के दुःख को दूर करने के लिए उसके जीवन को इस प्रकार ढाल दिया। निरायास प्राप्त यह विभूति, यह पदोन्नति, उसकी अपनी नहीं है। विधाता ने इसे परहितार्थ ही उसे प्रदान किया है। परिवार के प्रति उसका लम्बे सात वर्ष का वह निर्वेदभाव, राम के वन-गमन की भाँति शायद श्रेयस्कर ही होगा जिसका रहस्य, यद्यपि उसे अभी विदित नहीं, किन्तु कालान्तर में अवश्य खुलेगा।

मस्तिष्क की सुगूढ़ गहराई में उस पदोन्नति से उत्पन्न भय और निराशा का घाव अब सूख गया था और रह गया था केवल एक चिह्न-मात्र। वहाँ कोई संगीत न था फिर भी इस समय उसे अपने चतुर्दिक संसार की गतिविधि किसी संगीतमय स्वर लहरी के साथ ताल-मेल करती-सी मधुर लगी। सब कुछ सुन्दर था, सब कुछ नवीन।

उसी क्षण दफ्तर के चपरासी ने आकर कहा—"साहब ने आपको सलाम दिया है।"

प्रेमबल्लभ अफसर के सम्मुख जा खड़ा हुआ। वे आठों फाइलें उस समय मेज पर थीं। अफसर से बैठ जाने का संकेत पाकर वह निर्विकार भाव से 'थैंक्यू सर' कहकर बैठ भी गया।

अब एक-एक मामले को लेकर साहब उसे समझाने लगे कि किस में कहाँ तक जाँच हो चुकी है और अब आगे कैसे और क्या

करना है। प्रेमबल्लभ ने मन-ही-मन भगवान को धन्यवाद दिया कि साहब ने आज प्रातःकाल की बातों का इस समय उल्लेख भी नहीं किया। वह अपने उस व्यवहार से लज्जित था, लेकिन अब उस प्रकरण पर बात करना या उसके लिए क्षमा-याचना करना कम कठिन काम न था।

वह तल्लीनता से अधिकारी की बातें सुनता रहा यद्यपि उनमें सुनने योग्य कुछ न था। उसे तो प्रत्येक घटना याद हो चुकी थी। जब अधिकारी ने एक पर्वतीय स्थान का दो-तीन बार अशुद्ध उच्चारण किया तो वह चुप रहा, जब वह एक घटना का गलत वर्णन करने लगे तब भी खामोश रहा, अन्त में जब वह एक मामले को उसी प्रकार की दूसरी फाइल में उल्लिखित मामला समझकर उस पर गलत आदेश देने लगे तो प्रेमबल्लभ ने कुर्सी से उठकर कहा—"क्षमा कीजिए, यह ऐसा नहीं है। इस अपराधी की बात दूसरी मिसल में है।" फिर दोनों मिसलों को उठाकर साहब के सम्मुख रखते हुए प्रेमबल्लभ ने दोनों मामलों की सूक्ष्म विवेचना करके बतला दिया कि वह कहाँ पर गड़बड़ा गए थे।

अब तक निर्विकार भाव में बैठे हुए मूर्ख से दीखनेवाले प्रेमबल्लभ की अनोखी ग्रहण-शक्ति को देखकर अधिकारी दंग रह गया। शेष मामलों पर भी विचार-विमर्ष हुआ। इस बार समझाने का काम प्रेमबल्लभ ने किया, केवल आगामी जाँच के सुझाव साहब देते रहे। उनके सुझावों में भी प्रेमबल्लभ नम्रतापूर्वक संशोधन करता रहा।

प्रेमबल्लभ की कानूनी बिन्दुओं की पकड़ और नामादि को याद रखने की अद्भुत प्रतिभा से अधिकारी बड़ा प्रभावित हुआ।

प्रेमबल्लभ का व्यक्तित्व ही ऐसा था कि उसके सम्पर्क में आनेवाले छोटे-बड़े सभी अधिकारी उसके इस प्रभाव से न बच पाते थे।

अधिकारी ने बात के समाप्त होने पर कहा—"मुझे तो ये पहाड़ी नाम याद भी नहीं रहते, आपको थोड़ी ही देर में सब ऐसे याद हो गए मानो आप ही ने घटनास्थल पर जाकर इनकी जाँच की हो। सचमुच मैं ऐसे ही योग्य व्यक्ति की तलाश में था।"

"जी नहीं," प्रेमबल्लभ ने सकुचाकर कहा—"पहाड़ का निवासी हूँ...।" इसके आगे वह कहना चाहता था कि भानकोट के पास ही तो मेरा गाँव है, किन्तु जिह्वा की नोक तक आए हुए इस विचार को शब्दों में परिणत न करके एक निःश्वास छोड़कर ही चुप रह गया।

उस निःश्वास का प्रभाव भी अधिकारी पर पड़ा। उसने सहृदयता से कहा—"मैं आपकी कठिनाई समझता हूँ। अपने ही जिले में जासूसी करना या अपराधियों को पकड़ना सुगम नहीं है। इसीलिए आपको इस नियुक्ति को ग्रहण करने में संकोच होना स्वाभाविक है, किन्तु हमारे विभाग के लिए और विशेषतः मेरे लिए आपको इस स्थान को ग्रहण करना ही चाहिए। आपको तो निश्चय ही कष्ट होगा किन्तु वह कितने ही अन्य व्यक्तियों का उपकार कर सकता है। वास्तव में बिना किसी अतिशयोक्ति के मैं कह सकता हूँ कि सारे विभाग में कोई दूसरा अफसर इस कार्य को नहीं कर सकता है। आप ही इसके सर्वथा योग्य हैं।"

"मैं आपकी इस प्रशंसा के योग्य बनने का प्रयत्न करूँगा।" प्रेमबल्लभ ने सकुचाकर कहा—"लेकिन एक प्रार्थना मेरी भी है कि जब तक मैं स्वयं न चाहूँ मेरे अधीन काम करनेवालों को पता न चले कि मैं कहाँ का निवासी हूँ।"

तेरह

धीरे-धीरे मधुली के व्यवहार में परिवर्तन आ गया। उसे काम करने में अब बचपन का-सा उत्साह नहीं होता। जब सास उसे जल्दी करने को कहती है तो वह जान-बूझकर देर कर देती है। यदि किसी दिन दस बजे प्रातःकाल तक जंगल से न लौटने पर सास उसे फटकारती है तो दूसरे दिन वह उसे चिढ़ाने के लिए बारह बजे तक नहीं आती। अपने प्रति परिवार भर का निरंतर उपेक्षित व्यवहार देखकर ही यह प्रवृत्ति उसमें उत्पन्न हुई है। कहीं कोई उसे सान्त्वना देनेवाला नही दीखता। पति के पत्र या तो आते ही नहीं, वर्ष में यदि दो-एक बार कभी आते है तो उसे पढ़ने को नहीं मिलते। शायद उनमें उसका जिक्र भी नहीं होता। मायके में उसकी माँ का भी देहान्त हो गया है। पिता उसके मायके जाने पर प्रसन्न नहीं होते। दो-एक बार जिद करके वह गई भी है तो उसे अपने ही पिता

के रूखे-सूखे व्यवहार से जल्दी ही वापिस ससुराल आना पड़ा है। अपने हाथ से मन्दिर को बनाकर उसमें स्थापित मूर्ति को भी स्वयं ही घड़कर जिस प्रकार शिल्पी को अछूत कहकर फिर उसी मन्दिर में प्रवेश करने का अधिकार नहीं दिया जाता वैसी ही उसकी दशा है। सारे परिवार के भोजन की व्यवस्था उसी के परिश्रम पर निर्भर है लेकिन उसी को सबसे खराब बचा-खुचा भोजन सबसे बाद में मिलता है। पशुओं का पालन-पोषण उसी की दूर जंगल से लाई हुई घास से होता है लेकिन दूध-दही और घी जैसी वस्तुएँ उसे स्वप्न में भी देखने को नहीं मिलतीं। सब समझते हैं कि वह पराई ही नहीं, सौतेले बेटे की स्त्री ही नहीं, एक नितांत दूसरे ही धातु की बनी है जिसको रूखा-सूखा जो मिले खाकर केवल मजदूरनी का-सा काम करना है, जिसे न थकावट होनी चाहिए न विश्राम की आवश्यकता, जिसकी न कोई अपनी इच्छा है—न अपना कोई शौक, जो उन तत्वों से बनी ही नहीं है जिससे परिवार के और प्राणी बने हैं।

कुत्सा और उपेक्षा की निरन्तर मार के कारण उसका शरीर ही नहीं मन भी सध गया है। व्यवहार में एक गम्भीर शिथिलता आ गई है। बोलती भी बहुत कम और उस सूक्ष्म वाणी में न मिठास रहता है, न बोलने की इच्छा। जब बोलना अनिवार्य हो तभी बोलती है। चोट खाए हुए नगाड़े की भाँति उसके मुँह से निकले शब्द भी सुननेवालों के मन में देर तक झाँय-झाँय करते रहते हैं।

माता-पिता को प्रेमबल्लभ से अब कुछ आशा नहीं। वे उसके व्यवहार से कुपित हैं, लेकिन इस कोप की मार मधुली पर ही पड़ती है। जो कुछ बुरा-भला दूर देश में नौकरी करनेवाले सौतेले लड़के के प्रति कहा जाता है वह भी उसी को सुनाया जाता है। लेकिन मधुली

को इससे कुछ सरोकार नहीं। आँखों पर पट्टी बँधे हुए बैल की भाँति अपने मन-मस्तिष्क, दोनों को बाँधे वह रात-दिन अपने काम में लगी रहती है। उसे किसी से कोई उलाहना नहीं। न वह किसी की निन्दा करती है और न सास-ससुर को ही बुरा-भला कहती है क्योंकि वह जानती है कि गाँव की सभी बहुओं के भाग्य में यही बदा है। एकमात्र वही नहीं सभी उसकी समवयस्क बहुएँ ऐसा ही तिरस्कृत जीवन यापन कर रही हैं। एक प्रकार से उन ऐसी बहुओं का साथ ही उसके आन्तरिक साहस और उसकी असीम सहनशीलता का कारण है।

गाँव की और बहुएँ उसे बड़ा चाहती हैं। घर से बाहर पाँव रखते ही वह बदल जाती है और विनोदप्रिय बनकर सहेलियों का खूब मन बहलाती है। उसके शब्दों में तब न झाँय-झाँय होती है, न चिनगारियाँ ही निकलती हैं। किस पर क्या बोली और कैसे उसने अपने सतानेवालों को छकाया यही विनोद का विषय बन जाता है। बहुओं को एक-दूसरे के भाग्य पर सहानुभूति है। उनकी सबसे अधिक सहानुभूति गाँव के कोली की बहू सीता से है। वह बेचारी दूर गौरो गंगा के पार नेपाल देश की रहनेवाली है। पति उसका दस-बारह वर्ष से परदेश गया है, वहाँ किसी मिल में नौकर है। वहीं उसने किसी परदेशी स्त्री से विवाह कर लिया है। न कभी घर आता है, न परिवार के लिए ही कुछ भेजता है। विवाह के उपरांत सीता के माँ-बाप ने उसकी कभी सुध भी नहीं ली है। चैत के महीने में और ग्राम-वधुओं के घर से कोई-न-कोई भेटोली[1] आ जाती है।

---

१. भाई की भेजी सौगात।

उसने विवाह के उपरांत बारह-तेरह चैत बिता दिए, कोई रूमाल तक वहाँ से नहीं मिला।

बूढ़े पतरौल की बहू, गंगा मधुली की दूसरी सखी है। पतरौल कभी जंगल विभाग में नौकर रहा था। अब तो कई वर्षों से छः रुपये मासिक पैंशन पाता है। उसका एक लड़का विशंभर था। पढ़ने में खूब तेज था। उसका विवाह पास के गाँव की लड़की गंगा से बचपन में ही हो गया था। कक्षा चार के बाद गंगा का पढ़ना तो छूट गया था लेकिन विशंभर पढ़ता रहा था। पढ़ने के लिए पहाड़ी गाँव से शहर, शहर से बनारस और बनारस से विलायत तक गया। अब दिल्ली में बड़ा भारी नौकर है। इस गाँव में वह कभी नहीं आता। आए भी कैसे, रेल के स्टेशन से तीन सौ मील दूर मोटर की उबड़-खाबड़ सड़कों से होकर आना और रास्ते में गंदी दूकानों में रात काटना उसके लिए सम्भव नहीं है। फिर गंगा से वह खुश भी नहीं है। उसने भी एक डॉक्टरी पास लड़की से शादी कर ली है। गंगा को आशा नहीं है कि उसका पति कभी गाँव में लौटकर आएगा, लेकिन इससे क्या! वह तो समझती है पत्थर और लकड़ियों से बने पतरौल के निर्जीव घर से ही मानों उसकी शादी हुई है। इसी घर में अब आजन्म उसे रहना है। उसको सारी ममता उसी घर पर है।

एक और लड़की कांता है। उसकी गृहस्थी शेष तीनों से इस अर्थ में अच्छी कही जाती है कि वह अपने घर की स्वयं मालकिन है। वह एक लड़के की माँ भी है। सास उसकी मर गई है और बूढ़े ससुर की दोनों आँखों में मोतियाबिन्द है। खाने-पहनने को पेट-भर हो जाता है। उसका पति भी नवें दर्जे तक पढ़ा है। उसे वर्षों

पहले झण्डा उठाने में जेल जाना पड़ा। वहाँ से लौटकर अपने खेत गिरवी रखकर खादी का कारखाना खोला था, चरखे-करघे खरीदे थे, कपास बोई थी और भेड़ें पाली थीं। लेकिन भेड़ें मर गई हैं। कारखाना भी नहीं चला। ब्याज न दे सकने के कारण बहुत-सा ऋण करके वह घर से भाग गया था। परदेश में अपने किसी जेल के साथी के बड़े कारखाने में नौकर हो गया था। वहाँ से मजदूरों को भड़काने के अपराध में निकाल दिया गया था। अब वह भी शहर में रहता है, मजदूरों के काम के घंटे कम कराने और वेतन बढ़ाने के लिए हड़तालें कराता और पर्चे छापता है। गाँव के मास्टर के पते पर उसके पर्चे मुफ्त में आते हैं। कांता गंगा से उन्हीं को पढ़वा-कर संतोष करती है। मधुली को उसके पति की बातें बच्चों की खिल-वाड़-सी उपहास्य लगती हैं। वह कहती है जिन आदमियों के घर पर उनकी स्त्रियाँ और बहनें दिन में बीस-बीस घंटे बिना वेतन काम करती हैं भला उनके पति दूसरे शहर में वेतन पानेवाले मजदूरों से, जिन्हें सात दिन में एक दिन छुट्टी भी मिलती है, सात घंटे प्रति-दिन भी काम न करने के लिए क्यों कहते हैं। यह बात पढ़ी-लिखी गंगा की समझ में भी नहीं आती।

वैसे तो सौ डेढ़ सौ मवासे के उस गाँव में अनेक प्रोषित-पतिकाएँ हैं। किन्तु मधुली का साथ इन्हीं चार अपनी समवयस्क बहुओं से है। इन्हीं के साथ उसका जंगल आना-जाना रहता है।

चारों बहुएँ मानो चतुर्दिक विस्तृत शून्याकाश में पाँव तले कुछ भी आधार न होते हुए भी पारस्परिक स्नेहाकर्षण से आकाशीय पिंडों की ही भाँति निरायास चालित-सी अनवरत अपनी लीक पर घूमती चली जा रही थीं। दिन, मास और वर्ष मन-मस्तिष्कहीन इसी गतानु-गतिकता में बीत रहे थे किन्तु एक दुर्घटना ने सहसा उलकापात् की भाँति घटित होकर इस नक्षत्र-मण्डल की गति में व्यवधान [illegible]

चौदह

एक दिन चारों बहुएँ जंगल से लौट रही थीं। पंचवेणियाँ ताल के पास नित्य की भाँति सबने अपने-अपने घास की गट्ठर सिर से उतार दिए। यहाँ वे अपने घास के पुलों का बटवारा कर लेती थीं ताकि किसी को घर पहुँचने पर दूसरे से कम घास लाने के लिए सास-ससुर की डाँट न सहनी पड़े। कभी-कभी तो अपनी सास को चिढ़ाने के लिए मधुली स्वयं अपनी काटी हुई घास शेष तीनों में बाँटकर अपने पास बहुत कम पुले रखती थी। आज भी जब घास बट गई तो मधुली ने कहा, "अभी क्या जल्दी है।"

पास में किसी ग्वाले के द्वारा जलाई आग को देखकर उसने प्रस्ताव किया कि पास के चीड़ के पेड़ पर चढ़कर आज स्योंते[1] निकाले जाएँ और घाघरों की खलेतों में भर लिए जाएँ। इस पेड़ के बड़े-

---

१. चिलगोजा।

बड़े ठीटों[२] पर कई दिन से उनकी आँखें लगी थीं। प्रस्ताव स्वीकृत हो गया। पेड़ पर गंगा चढ़ी। मधुली ने आग ठीक की और थोड़ा अवकाश निकाल कर वह कई दिन से खुले अपने सिर को धोने के लिए ताल पर चली गई। कांता और सीता ने पेड़ पर से गिरे हुए ठीटों को भूनकर चिलगोजे निकालकर जमा करने आरंभ किए।

कुछ देर बाद गंगा ने पेड़ पर से देखा कि हाथ में चमड़े का बैग लिए एक व्यक्ति चुपचाप उन्हीं की ओर चला आ रहा है। थोड़ी देर तो गंगा ठीटे तोड़ती रही, लेकिन जब सीधे मार्ग को छोड़कर वह व्यक्ति, ताल पर गीले बालों को छितराकर सुखाने बैठी हुई मधुली की ओर बढ़ने लगा तो उसे आशंका हुई। इससे पूर्व कि गंगा मधुली से कुछ कहे वह व्यक्ति ताल के निकट पहुँच गया। शायद उसने किंचित् ऊँचाई पर चट्टानों की ओट में पेड़ पर चढ़ी गंगा और चिलगोजों को बटोरती कांता और सीता को नहीं देखा था। गंगा ने मधुली को सावधान करने के लिए एक पुराने गीत की लय छेड़ दी जिसमें स्पष्ट संकेत था कि—'ए प्रोषित-पतिका, तुम बाल क्यों छितराए हो, तुम्हारा परदेशी प्रियतम तो तुम्हारे घर के आंगन में ही आ खड़ा हुआ है।'

गीत को सुनकर विघ्नकर्त्ता पुरुष की दृष्टि पेड़ पर गई। वह कुछ झिझका, फिर उसने समझा कि दो ही तो लड़कियाँ हैं—एक पेड़ पर और दूसरी ताल के किनारे। साहस करके बोला—"चिल-गोजों में हमारा भी हिस्सा होना चाहिए।"

मधुली डरी नहीं। बचपन की-सी भीरुता अब उसमें नहीं रही

---

२. चीड़ के अन्ननास के आकार के फल।

थी। मुँह के सामने आए हुए बालों को ठीक करके वह चट उठ खड़ी हुई और 'जरूर मिलेगा' कहकर धीरे-धीरे फुर्ती से कदम रखती हुई कुछ दूर चट्टान की ऊँचाई पर चढ़ गई। अब वह व्यक्ति सबसे नीचे ताल के किनारे ही खड़ा था, पाँच-छः कदम की ऊँचाई पर चट्टान के सहारे मधुली खड़ी थी, चट्टान की ओट में कांता और सीता थीं, जिन्हें वह आगन्तुक नहीं देख सका था और लगभग सात फुट ऊँचे पेड़ की शाखा पर गंगा बैठी थी।

"तो तुम जा कहाँ रही हो ? बैठो !" आगन्तुक ने किताबिया पहाड़ी में कहा। मधुली को उस कृत्रिम बोली से पता चल गया कि यह कोई और नहीं वही पुराना बदमाश था जिसने एक दिन चतरख के सोते के पास उसके दुखते पाँव में दवा लगाने का सुझाव दिया था।

"अच्छा आप हैं, डॉक्टर साहब !" कहती हुई मधुली उचककर चट्टान पर जा बैठी और होंठों पर बनावटी हँसी लाकर बोली—"माचिस है जेब में आपके ?"

"है क्यों नहीं !" प्रसन्न होकर बदमाश बोला—"माचिस भी है और सिगरेट भी। क्या तुम सिगरेट पियोगी ?"

मधुली के मायके या ससुराल में मर्द तक सिगरेट नहीं छूते। इसलिए बदमाश के इस प्रस्ताव पर उसे और भी हँसी आ गई। साथ ही उसके इस प्रस्ताव को करने का साहस देखकर हृदय काँप भी गया। किन्तु यह समय अपने बदमाश की पकड़ के बाहर समझकर बोली—"सिगरेट तो आप पीजिए, लेकिन यदि आपकी चिलगोजे खाने की इच्छा हो, तो आग जलाइए—मैं अभी ठीटे लाती हूँ।"

बदमाश ने मन-ही-मन सोचा—'पहाड़ी चिड़िया कैसी फुदक रही है ! आज ज्ञात होता है कि यह मेरे जाल में फँस जाएगी। कितनी सुन्दर और कैसी अच्छी लड़की है यह, कैसी दुर्गति कर रखी है इस षोडषी की इन पहाड़ी लोगों ने ! जिस घर में जाएगी वह चमक उठेगा।' फिर भी उसे अपनी इस सफलता पर विश्वास न हुआ। आस-पास चारों ओर देखकर उसने यह विश्वास कर लेना चाहा कि कहीं कोई धोखा तो नहीं है। पेड़ पर चढ़ी हुई गंगा के अतिरिक्त कोई और न दीख पड़ा। कांता और सीता साँस रोके मधुली की बातचीत और उस निर्भय व्यवहार को देखकर हैरान-सी चट्टान के दूसरी ओर दुबकी बैठी थीं।

मधुली ने वहीं बैठे-बैठे गंगा को पुकारा—"अरी, जरा चार-छः ठीटे ताल की ओर फेंकना, डॉक्टर साहब को चाहिएँ।"

मधुली ने दो बड़े-बड़े ठीटे गिरा दिए। वे चट्टान के नीचे गिर पड़े और लुढ़कते हुए ताल के किनारे चले गए। बदमाश ने अपने पाँव से उन्हें रोक दिया।

"और फेंक री !" कहकर मधुली बदमाश की उपस्थिति की तनिक भी चिन्ता न करके अपने बाल ठीक करने में लग गई।

उसकी निर्भयता से उत्साहित हो बदमाश ने कहा—"मेरे बैग में तेल की शीशी भी है, बड़ा सुन्दर तेल है। लगाओगी तुम ?"

मधुली को बड़ा क्रोध आया, लेकिन दाँत पीसकर रह गई। सुना-अनसुना कर बोली—"डॉक्टर साहब, तुम आग सुलगाओ, मैं और ठीटे लाती हूँ।"

और मधुली चट्टान के पीछे कूद गई। दुबकी हुई सीता ने कहा—"क्यों बर्र के छत्ते में हाथ डालती हो ? यह अव्वल नम्बर

का बदमाश है। एक दिन नदी में मुझे देखकर पूछने लगा—'कहाँ जा रही हैं आप ?' मैंने उसके मुँह पर थूक दिया और जान बचाकर भागी वहाँ से।"

गंगा ने कहा—"बड़ा गुंडा है। मैं उस दिन जंगल आ रही थी। न जाने उतनी सुबह कहाँ से आ मरा ! बोला—'आज अखबार में विशंभर का नाम छपा है। परचा आया है मेरे पास, सुनोगी ?' मैंने ढेला उठाया तो चूहे के-से दाँत निकालकर 'हैं-हैं' करता हट गया। मैंने तो सिर तोड़ दिया होता इसका उस दिन !"

"आज बड़ा अच्छा अवसर है," मधुली ने कहा—"तुम ठीटे मेरे हाथ में देती जाओ, मैं तान-तानकर इसके सिर पर मारती हूँ। सारी गुंडई भूल जाएगा। हमें देखकर रास्ता छोड़कर ताल की ओर लपक आया है। मैं तो बदमाश की नजर पहचानती हूँ।"

अपने आँचल में चार-पाँच बड़े ठीटे रखकर मधुली उचककर फिर उसी चट्टान पर बैठ गई। बदमाश ने, ताल के किनारे तो नहीं, उसी चट्टान की जड़ पर घास-फूस एकत्र करके इतनी देर में आग सुलगा ली थी और तृषित नेत्रों से मधुली के फिर प्रकट होने की प्रतीक्षा कर रहा था।

न जाने धुएँ के कारण या यों ही मधुली को अपनी कुत्सित भावना से अवगत कराने के लिए बदमाश ने एक आँख मींचकर कहा—"लाओ, आग तो जल गई, ठीटे दे दो।"

मधुली ने तड़ातड़ चारों ठीटे कसकर बदमाश के सिर पर जमा दिए, फिर ज्योंही अपनी सहेलियों की ओर और ठीटे माँगने के लिए वह हाथ बढ़ाने लगी, चारों ओर से और ठीटे आ-आकर बादमाश के मुँह, कंधे और पीठ पर पड़ने लगे।

'हाय, हाय !' करता हुआ बदमाश ताल की ओर भागा, लेकिन अब उस पर ढेलों की लगातार बौछार पड़ने लगी। उसे भागते देख कांता और सीता भी चट्टान से नीचे कूद पड़ीं। उनके कूदने से एक बड़ा-सा पत्थर लुढ़क आया। बदमाश अब तक बदला लेने के विचार से इधर-उधर बचकर किसी-न-किसी बहाने वहाँ रुका था, अब उस बड़े पत्थर को अपनी ही ओर लुढ़कता देख झट उचककर एक ओर हट गया लेकिन इस उचकने में उसका पाँव काई-लगी चट्टान पर ठोकर खा गया और वह सपाट से फिसल गया। उसका मोटा स्थूल शरीर भी लुढ़कते हुए पत्थर के आगे-पीछे होता ताल के नीचे खड़ी चट्टान के ढाल पर लुढ़कने लगा। दूसरे क्षण वही पत्थर और वही काला शरीर एक बार एक साथ चट्टान पर चोट खाकर ऊपर उछले और सवा सौ फुट नीची सड़क पर जा गिरे।

चारों बहुओं ने जल्दी-जल्दी तमाम बिखरे ठीटों को ताल में फेंक दिया और अपने-अपने घास के गट्ठर लेकर गाँव की ओर कूच कर दिया।

पन्द्रह

उस शाम स्कूल से लौटनेवाले बच्चों द्वारा सड़क पर पड़ी लाश का समाचार गाँवों में फैल गया। शव की प्राप्ति के उपरांत उसकी दाह-क्रिया के लिए जब पंचनामा लिखा जाने लगा तो श्यामलाल ने इसका विरोध किया। उसका कहना था कि कनाली के घटवार शेरसिंह, मास्टर जयदत्त और हरदत्त काका से मृत डाक्टर शर्मा की वर्षों से शत्रुता चली आ रही है इसलिए उसे संदेह है कि मृत्यु आकस्मिक नहीं है, मामला हत्या का है। श्यामलाल को कई मुकदमों का अनुभव था। वह साल में तीन-चार नालिशें तो स्वयं दायर करता था, अपनी बात की पुष्टि के लिए उसने सात वर्ष पुरानी उस रात की घटना का वर्णन भी कर दिया जब इन तीनों ने मिलकर उसके मकान में टिके हुए डाक्टर शर्मा को खदेड़ भगाया था।

हरदत्त काका की पेशी हुई। उन्होंने तर्क किया—"हमने

अवश्य ऐसे एक दोखुटिए को उसकी हरकतों के लिए श्यामलाल की दुकान से भगाया था। यदि यह शव उसी का है तो वह मनुष्य नहीं 'दोखुटिया' था। सभी जानते हैं हमारी बहू-बेटियों को चुराकर पकड़ ले जानेवाला हिंस्र जंतु 'दोखुटिया' मनुष्य नहीं कहा जा सकता। वह तो एक जंगली जानवर ही है जो नाना रूप धारण करके अपना शिकार पकड़ने का प्रयत्न करता है। कभी डॉक्टर बनता है, कभी डाकिया, कभी साधु और कभी फकीर! कभी बहू के मायके का रिश्तेदार बन जाता है तो कभी उसके परदेश गए हुए पति के साथ काम करनेवाला सरकारी नौकर! यदि ऐसे जानवर का शव मिल जाय तो उसके लिए पंचनामे की आवश्यकता नहीं है। ऐसे जंतु के मारे जाने पर हमें 'जेवनार' करनी चाहिए कि एक शैतान से गाँव को छुटकारा मिल गया। उसी दिन, जिस रात हमने इस दोखुटिये को श्यामलाल की दुकान से खदेड़ा था, चामूसिंह लामे की दो भेड़ें भी मार डाली गई थीं। यह इसी दोखुटिये की करतूत थी।"

गाँववालों ने हरदत्त काका की बात का समर्थन करके कहा—"दोखुटिया और मैस्वाघ एक ही हैं। अन्तर यही है कि एक के दो पाँव होते हैं, दूसरे के चार!"

एक और बूढ़े ने तभी खाँसकर गला साफ किया और कहा—"मैस्वाघ के पूरे चार पाँव नहीं होते, चार पाँववाला तो बाघ ही कहलाएगा। बाघ बहादुर होता है। वह औरतों और बच्चों पर हाथ नहीं छोड़ता। मैस्वाघ के तीन ही पाँव होते हैं। कौरबेट[1]

---

१. 'कुमाऊँ के नरभक्षी शेर' नामक पुस्तक का रचयिता और शिकारी।

साहब के साथ रहकर मैंने जितने भी मैस्वाघ मारे हैं वे सब तीन टाँग के थे। उनकी किताब में भी यही लिखा है।"

मैस्वाघ और बाघ के गुण-दोषों पर फिर ग्रामीण लोगों की अनेक कहानियाँ आरम्भ हो गईं। पटवारी ने निर्णय किया कि शव डॉक्टरी परीक्षा के लिए सदर भेजा जाएगा।

पर्वतीय जिलों में अपराधों की न्यूनता के कारण पुलिस विभाग की कभी किसी भी शासक को आवश्यकता नहीं जान पड़ी। इसीलिए अंग्रेज अधिकारियों ने पहाड़ी प्रदेश में अन्य जिलों की भाँति थाने नहीं स्थापित किए। वहाँ केवल शहरों को छोड़कर, देहात में पुलिस का सारा काम पटवारी को ही सौंपा गया है। पर्वतीय देहात में आकस्मिक घटनाओं की विधिवत् व्यवस्था करने के लिए थानेदार के अधिकार पटवारी को ही प्रदान किये गए हैं। यही व्यवस्था पर्वतीय जिलों में इस बीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में भी चली आ रही है।

पटवारी के इस सुझाव का कि शव-परीक्षा के लिए लाश सदर भेजी जाए उस समय तो किसी ने विरोध नहीं किया, किन्तु सात दिन बाद जब जाँच करने के लिए शहर से लाल पगड़ीवाली पुलिस उन गाँवों में चक्कर लगाने लगी, तो गाँववालों ने इसे अपना अपमान समझकर इसका विरोध किया। बूढ़े और सयाने लोगों ने कहा—"आज तक हमारी याद में शहर की पुलिस तहकीकात करने गाँव में नहीं घुसी। अंग्रेज अफसर आते थे तो पहरा देने हम ही लोग बुलाए जाते थे। अकाल के वर्ष दस लाख रुपया तकावी में बटने के लिए आया था तो हम ही लोगों को उसकी रखवाली के लिए रखा गया था। क्या आज हम इतने बेईमान हो गए कि

शहर की पुलिस हमारे पीछे लगाई गई ?"

पंचायतें बैठीं और थोकदारों[1] ने फैसला किया कि पुलिस के सामने कोई भी गाँववाला अपने बयान देने नहीं जाएगा।

थानेदार और उसके सिपाही हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहे। उन्हें खाने तक को किसी ने नहीं पूछा।

थानेदार ने इस जाँच से पीछा छुड़ाने के लिए शहर वापस जाकर जिले के अधिकारियों को लिखा कि जो व्यक्ति मारा गया है वह औरतों को भगानेवाला 'दोखुटिया' था, इसलिए इस मामले की जाँच, इसी हेतु बनाए गए, नये विशेष पुलिस दल के कमिश्नर के द्वारा की जानी चाहिए। इस प्रकार यह मामला उस दल को सौंपा गया जिसमें कालान्तर में प्रेमबल्लभ नियुक्त हुआ।

उन पर्वतीय उबड़-खाबड़ प्रदेशों के मार्गों से अनभ्यस्त और वहाँ के निवासियों के निर्द्वन्द्व आत्माभिमानी स्वभाव से अनभिज्ञ परदेशी पुलिस को इस हत्या की जाँच करने में कई महीने तक कोई सफलता नहीं मिली। शव-परीक्षा से भी यह बात स्पष्ट नहीं थी कि मामला हत्या का है या आत्म-हत्या का, इसलिए बात टलती रही। किन्तु जब पर्वतीय बहुओं के अपहरण के अन्य मामलों की जाँच आरम्भ हुई और प्रेमबल्लभ जैसे कर्त्तव्यपरायण व्यक्ति के पास वह मिसल पहुँची तो मामले की पूरी छानबीन होना अनिवार्य था।

उसने जाँच आरम्भ करने से पूर्व बिना किसी को साथ लिए चुपचाप साधारण वेश में एक बार गाँव जाकर वास्तविकता का

---

१. गाँव-प्रधानों का मुखिया।

पता लेना चाहा। यद्यपि उसके अफसर को इस हत्या के अपराधी को पकड़ने में अधिक दिलचस्पी नहीं थी तथापि वह चाहते थे कि 'दोखुटिए' को जीवित पकड़ना चाहिए। एक भी दोखुटिये की हत्या हो जाने पर उससे सम्बंधित शेष मामलों में अनेक बातों का पता चल जाता है, बहुत से नये अपराधियों के सम्बन्ध में जानकारी हो जाती है और उसके मारे जाने पर जाँच के कार्य में सहायता नहीं मिल सकती। जब प्रेमबल्लभ ने 'दोखुटिये' का तात्पर्य समझाकर उन्हें बतलाया कि पहाड़ के सीधे-सरल प्रकृति के कुछ लोग सचमुच यह विश्वास करते हैं कि दोखुटिया भूत-प्रेत जैसी कोई योनि है, जो मनुष्य का रूप धारण करके अनवधान स्त्रियों को पकड़ ले जाता है, तो अधिकारी ने इस बात पर शंका नहीं की। उसने इस बात पर जोर दिया कि ऐसी भ्रान्ति का पुलिस अधिकारियों को निवारण करना चाहिए। इस हत्या के बारे में अधिकारी की राय थी कि यदि उसी भ्रान्ति के कारण किसी ने उस 'दोखुटिये' की हत्या कर डाली हो तो पुलिस को भविष्य में अपने काम की सफलता के लिए न्यायालय को इस वास्तविकता से अवगत कराकर अपराधियों को क्षमा करा देने में संकोच न करना चाहिए।

अब यह प्रेमबल्लभ के लिए बड़े भाग्य की बात थी कि वह अपराधियों का पता लगाकर उनको क्षमा भी करा सकता था।

सोलह

इस प्रकार आश्वस्त होकर प्रेमबल्लभ तीन दिन की छुट्टी लेकर अकेले और चुपचाप एक दिन अपने गाँव की ओर चल पड़ा। चलते समय उसने अपने मन्तव्य से अपने अफसर को अवगत करा दिया। इस स्पष्टवादिता और आत्मविश्वास के कारण अधिकारी की दृष्टि में उसका सम्मान और बढ़ गया।

पिछले मास का पूरा वेतन और भत्ते के बिल के कुल मिलाकर चार सौ रुपए गाँव जाते समय प्रेमबल्लभ की जेब में थे। गाँव तक मोटर नहीं जाती। मील डेढ़ मील पैदल चलना पड़ता है, इसलिए हाथ में एक छोटा-सा चमड़े का सूटकेस ले लिया। उस में अपने लिए एक ऊनी अलवान के अतिरिक्त परिवार के नौ व्यक्तियों के लिए छोटे-बड़े अनेक उपहार थे। माँ के लिए ऊनी पिछौड़ा था, पिता के लिए स्वेटर था, पत्नी के लिए नए प्रकार का दुपट्टा और दो साड़ियाँ

थीं। भाइयों के लिए धोतियाँ और कोट के कपड़े थे। सबसे छोटों के लिए खिलौने भी थे।

मोटर की नई सड़क गाँव के किनारे तक बन गई थी। प्रेम-बल्लभ कर्नाली के किनारे शेरसिंह के घट के पास उतरा। घट बिलकुल वही था। वही काठ का परनाला जिसके ऊपर कोने पर लाल-लाल लकड़ी की गाँठ चमकती थी, अब भी पानी गिरने के लिए लगा हुआ था। घर के मार्ग में पानी के उस धारे में पत्थर के मगर के मुँह से अब भी पानी घोड़े की पूँछ-सा पैरेबोला के आकार का हो कर गिर रहा था।

उससे आगे खेतों को सींचनेवाली कूल में वैसी ही कूं-कूं-कूं ध्वनि हो रही थी। इस ध्वनि को इस कूल में वह बचपन से सुनता आया है। जब वह बहुत छोटा था, उसे बताया गया था कि वह पानी के बहुत नीचे धन से भरे एक घड़े के रक्षक किसी अदृश्य लाल नाग का शब्द है। उसने भी इस नाग को कभी नहीं देखा था। कूल के किनारे के खेत उस नाग के कारण नागखेत कहलाते थे। नाग-खेत से आगे गधेरा[1] था। उसमें दाड़िम के पेड़ों पर खंजन उसी प्रकार फुदक-फुदककर गा रही थी। अन्तर यही था कि बचपन में यह पेड़ उसे बहुत ऊँचा दीखता था, आज कुछ नीचा-सा लगा। आगे वह परिचित गिरिणितंब दमकाभिड़ था। उसके सीढ़ी के आकार के खेतों की कोरी दीवार का एक-एक पत्थर उसका परिचित है। उसने ही बचपन में अपने पिता के साथ इन दीवारों को खड़ा किया था।

---

१. पहाड़ी नाला।

खेतों के किनारे अखरोट का पेड़ खूब बड़ा हो गया था। आज भी नीले-नीले घुघतों[1] के जोड़े उसी प्रकार गुटरगूँ कर रहे थे। फिर वह आंगन में पहुँच गया। धूप छाजे[2] से निकलकर चाख[3] में घड़ी का काम कर रही थी। उसने बचपन की आदत के अनुसार धूप को देखकर पता लगा लिया कि इस समय शाम के चार बजे होंगे।

उसे देखकर चारों बच्चों ने एक साथ आवाज लगाई—"आ गए प्रेम-दा! आ गए ठुल-दा[4]!"

फिर मैले-मैले कपड़े पहने उसके पिता जयदत्त भी आ गए और अपने कपड़े संभालती गोद में बच्चे को चिपटाए उसकी विमाता भी। प्रेमबल्लभ ने उन दोनों के पाँवों की रज ली और बच्चों को प्यार किया। विमाता ने आज सजल नेत्रों से उसका स्वागत किया। प्रेमबल्लभ माता-पिता के स्नेह-प्रदर्शन से गद्गद हो गया।

मधुली खेतों में काम करके देर से लौटी और ऊखल में जुटे रहकर फिर पड़ोस में हरदत्त काका के घर चली गई। उस शाम हरदत्त काका की नातिन मालती का विवाह था। घर के सब लोगों को निमंत्रण था। प्रेमबल्लभ भी वहाँ गया और खाना खाकर अपने पिता के साथ जल्दी ही लौट आया। उसे आशा थी कि मधुली भी उसे देखकर घर लौट आएगी। वह बहुत देर तक चारपाई पर लेटे-लेटे अपने साथ में लाई हुई पत्रिका पढ़ता रहा। फिर किसी बहाने बाहर आकर सभी बिस्तरों को देख गया। सब खाली थे।

शाम को जब कुछ क्षणों के लिए उसका और मधुली का आमना-सामना हुआ था, तो मधुली के मुख पर ऐसी शीतल गंभीरता

---

१. पक्षी विशेष। २. छज्जा। ३. बैठक का कमरा। ४. बड़े भाई।

व्याप्त थी मानो नवागंतुक को वह पहचानती ही नहीं। प्रेमबल्लभ उस के एक-एक शब्द और हाव-भाव का अध्ययन कर रहा था, किन्तु मधुली सुस्थिर और निर्विकार हो काम में लगी रही। दो क्षण के लिए जब प्रेमबल्लभ ने उसके मुख पर दृष्टि गड़ा दी, तो भी उसकी पलकें नहीं झपकीं। वह पूर्ववत् धीर और गंभीर रही।

कमरे में मोमबत्ती का प्रकाश था। मोमबत्तियों का एक बंडल वह अपने साथ ले आया था। थोड़ी देर वह अकेले कमरे की छत की कड़ियों को गिनता रहा। धूएँ की कालिख और कमेट[1] की सफेदी से कड़ियों का रंग पीला-सा हो गया है। बचपन में उसे ये कड़ियाँ खूब ऊँची लगती थीं। अब तो यदि वह संभलकर न चले तो सब से किनारे की कड़ी उसके सिर से टकरा सकती थी। उसे याद था उस कड़ी पर गौरैया घोंसला बनाती थी। कोने पर चिड़िया की बीट के चिह्न अब भी हैं। यह सोचकर उसने आँखें बन्द कर लीं कि आज न सही, कल मधुली से बात हो जाएगी। किन्तु उसके उस शीतल व्यवहार से उसका मन व्याकुल था।

तभी किवाड़ खुलने का शब्द हुआ। प्रेमबल्लभ यह सोचकर कि शायद वह आ गई झट उठ बैठा। आनेवाला नन्हे था। प्रेम-बल्लभ के पूछने पर कि क्या माँ लौट आई उसने कहा, "माँ को सुबह कन्या-दान में रहना है। वह रात वहीं सोएगी।"

प्रेमबल्लभ यह नहीं पूछ सका कि क्या उसकी भाभी भी रात वहीं रहेगी।

वर्षों में एक बार शादी-ब्याह के अवसर पर लड़कियों को

---

१. सफेद मिट्टी।

आमोद-प्रमोद का अवसर मिलता है। उसमें मैं क्यों बाधा डालूँ ? यह सोच बत्ती बुझा और सिर तक कपड़ा तानकर प्रेमबल्लभ लेट गया । लेकिन मधुली का वह रूखा-रूखा व्यवहार उसे बड़ा बेसुर-सा लगा ।

यद्यपि रात में मधुली के लौटने की आशा न थी, किन्तु प्रेम-बल्लभ आकर्ण हो प्रत्येक शब्द सुन रहा था । कुछ देर बाद उसने किसी को कहते सुना : "लल्ला, मुनिया को अपने साथ सुला लो । मैं गोठ[1] में जाती हूँ।" यह मधुली का स्वर था, नन्हे को संबोधित किया गया था।

नन्हे ने उत्तर न दिया। वह शायद सो गया था । प्रेमबल्लभ ने देखा कि मधुली के एक हाथ में जलता हुआ छिलुका है और दूसरे से वह सोई हुई अपनी सबसे छोटी ननद को गोद में संभाले है । उसके आधे सिर तक आए फटे हुए पिछौड़े के नीचे पीठ पर बिखरी काली केशराशि कमर तक चली गई है । दो-चार बिखरी अलकें छिलुके के प्रकाश में गौर वर्ण के माथे पर बिखरी बड़ी सुंदर लग रही हैं। छोटे-से गोल-गोल स्निग्ध चेहरे पर युवावस्था की प्राप्ति पर भी शिशुसुलभ कौमार्य खेल रहा है। छोटे-छोटे पतले होंठों से घिरा हुआ मुख-विवर अब भी बचपन की ही भाँति अत्यधिक छोटा लगता है। उन होंठों पर वह मधुर भाव और उन आँखों में वह निष्कपट आभा आज भी उसे उस शाम की याद दिलाने लगी जब उसने पहलेपहल उसे नदी के किनारे दराँती पर शाण धरते देखा था। प्रेमबल्लभ मन-ही-मन सोचने लगा : नहीं, वह नहीं बदली।

---

१. नीचे का खंड।

उसका यह व्यवहार केवल स्वाभाविक संकोच और नारीसुलभ लज्जा का ही द्योतक था।

मधुली ने नन्हे के बिस्तर के पास जाकर दो-तीन बार फिर वही शब्द दोहराए। लेकिन नन्हे खर्राटे लेता रहा। फिर मधुली ने छिलुका सिगड़ी पर रख दिया। बच्ची के झूलते सिर को सहारा दे कर वह कोने पर एक ओर बिस्तर को खोलने लगी। प्रेमबल्लभ और उसके बीच चार ही कदम का फासला था। उसे आशा थी कि शायद मधुली बच्ची को सुलाकर उसके कमरे की ओर आएगी वह साँस रोके लेटा रहा।

मधुली ने बच्ची को सुलाया और उस बोझ के कारण दुखती बाँह को सहलाने के लिए बाँहें उठाकर नटखट बिल्ली की भाँति अंगड़ाई ली। फिर छिलुका उठाया और धीरे से खोली बन्द करके सीढ़ियों से उतर गई। प्रेमबल्लभ के कमरे की ओर झाँका तक नहीं।

प्रेमबल्लभ ने मन-ही-मन सोचा : चलो, अच्छा ही हुआ। इस कमरे में वह आती भी कैसे ! पास ही तो पिता सोए है, नन्हे भी है। लेकिन फिर यह विचार कि शायद कल भी वह तड़के ही उठकर जंगल चल देगी और फिर रात तक काम में लगी आज की ही भाँति बेखबर सो जाएगी, उसे विचलित करने लगा।

वह उठा और धीरे से नंगे पाँव ही गोठ की ओर चला गया।

सत्तरह

मधुली सोई नहीं थी। घुटनों के बल पयाल के गद्दे पर झुकी तल्लीनता से कोई सूक्ष्म अध्ययन-सा कर रही थी।

प्रेमबल्लभ के बिलकुल निकट आ जाने पर उसने चौंककर पीछे देखा। अचानक उस मिलन से देह पुलक उठी। हाथ का सामान गिर पड़ा। प्रेमबल्लभ ने देखा, वह सूई-डोरा लिए अपना टूटा काला चरेऊ[1] पिरो रही थी। वह अचकचा कर उठ बैठी।

प्रेमबल्लभ गद्दे के कोने पर बैठ गया। वीणा की झनकार की प्रतीक्षा में, जिससे तन-मन में एक अनिर्वचनीय आनंद व्याप्त हो जाता है, दोनों क्षण भर चुपचाप बैठे रहे, फिर प्रेमबल्लभ ने

---

१. मंगलसूत्र—काले मोती की माला जिसे सधवा को पहनना आवश्यक होता है।

ही कहा, "मंगलसूत्र टूट गया था क्या ?"

पति की बात सुनकर मुसकराहट से उसका नत चेहरा जगमगा उठा । छोटी अबोध बच्ची की भाँति अपने श्वेत शंख से कंठ को तानकर उसे दिखाती हुई सफाई देकर बोली, "एक लड़ तो मेरे गले में है ही, दूसरी के टूटने से अमंगल नहीं होता है ।" मन-ही-मन यह भी सोचा कि जब पत्नी ही त्यक्ता हो तो उसका मंगलसूत्र टूटने पर पति का अमंगल कैसे हो सकता है ?

मंद-मंद हँसते हुए उसने हाथ की लड़ भी गले में बाँध ली, फिर हँसते हुए सारा गद्दा प्रेमबल्लभ के लिए छोड़कर वह अस्पृश्या एक कोने पर बैठ गई । उसने फिर कहा, "तुम तो अब बड़े आदमी हो न ? पुलिस के अफसर । इस पयाल के मैले गद्दे पर बैठने में घिन लगती होगी । इसका कपड़ा देख रहे हो ? यह मेरी माँ का लहंगा था—सबसे अच्छा लहंगा । उसके मरने पर मैं इसे यहाँ ले आई ।"

"माँ मर गई क्या ?"

"पाँच वर्ष हो गए ।"

"मुझे खबर भी नहीं दी तुम लोगों ने ।"

"तुम क्या कभी चिट्ठी भी डालते थे ? लेते थे किसी की खबर ? आज भी न जाने किस मतलब से आए हो । पुलिस के आदमी हो न ।"

प्रेमबल्लभ ने कहा, "मुझे तुम्हारी याद नित्य आती थी ।"

"झूठ !" उसने कहा—"तुमने तो वहाँ जाकर नई शादी कर ली होगी । तुम भी तो आदमी ही हो । सभी वहाँ जाकर शादी कर लेते हैं ।"

"नहीं, तुम्हारी सौगंध !" प्रेमबल्लभ ने उसकी चिबुक को उठा

कर आँखों में देखकर कहा, "मैं तुम्हें धोखा नहीं दे सकता ।"

"तो अब कर लेना," मधुली ने कहा—"मुझ जैसी पहाड़ी लड़की से तुम्हारा मन तो भरेगा नहीं । देस में मैं रहूँगी भी कैसे ! मुझे भी घाम लग[1] जाते हैं । फिर मुझे इस घर से छुट्टी मिलना भी तो आसान नहीं । माँ-बाप, भाई-बहन सबसे लड़कर तुम उनकी दासता से मुझे छुटकारा दिला पाओगे ? इतने व्यक्तियों के कोपभाजन बनकर फिर तुम गाँव में रहोगे भी तो किस मुँह से !"

यह बात अक्षरशः सत्य थी । इसीलिए प्रेमबल्लभ कुछ क्षण चुप रहा । फिर मन-ही-मन निश्चय करके बोला, "इस बार तो नहीं, दोबारा छुट्टी में आकर मैं तुम्हें अपने साथ अवश्य ले जाऊँगा । घर-वालों के लिए मैं अब पचास रुपए मासिक भेजा करूँगा । मैं तुम्हें इस प्रकार कष्टमय जीवन व्यतीत न करने दूँगा ।"

"मैं नहीं जाऊँगी तो क्या मुझे जबरदस्ती ले जाओगे ? और मेरा ही जीवन कौन-सा कष्टमय है । गाँव की सभी बहुएँ इसी प्रकार दुख सहती हैं । हम तो तुम्हारी फुलवारी के पेड़ हैं—बिना जड़ के पेड़ ! पालो-पोसो, काटो या जला डालो—मुँह न खोलेंगे । गाँव में सावित्री है, कांता है, सीता है—तुम भला किस-किस स्त्री का दुख हरोगे । प्यार की बात कहते हो ? भला, मैं कौन स्वर्ग की अप्सरा हूँ ! मैली-कुचैली निरी देहातिन । तुम आए क्यों हो—यह सब मुझे मालूम है । मेरी माया[2] तुम्हें यहाँ नहीं खींच लाई, अपने मतलब से आए हो तुम ।"

प्रेमबल्लभ को यह बात अच्छी न लगी । वह बोला, "क्या

---

१. लू लगना । २. प्रेम ।

मालूम है ? बताओ।"

"जो दोखुटिया पुलिस सुपकोट में रहती है, उसी के तो तुम अफसर हो। हरदत्त काका ने तुम्हें पहली ही बार वहाँ पहचान लिया था। तुम उन्हें अलबत्ता नहीं पहचान पाए थे।"

"वह दोखुटिया पुलिस नहीं," प्रेमबल्लभ ने कहा। "दोखुटियों को पकड़नेवाली पुलिस है।"

"यहाँ तो वह हमें ही पकड़ने आई है--औरतों को पकड़ने," मधुली ने एक निःश्वास लेकर कहा--"क्यों जी, तुम सब पढ़े-लिखे लोग आदमी का ही पक्ष क्यों लेते हो ? चाहे कितना ही बुरा आदमी क्यों न हो, सब उसकी मदद करने को तैयार हो जाते हैं। बेचारी स्त्रियों को कोई नहीं पूछता। सावित्री को भगा ले जानेवाला दोखुटिया जब पकड़ा गया, तो जिले के सबसे बड़े नेता, वही चरखा कतवानेवाले महाशयजी, जो स्कूलों में भाषण देने आते थे, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के चेयरमैन, उस दोखुटिए की ओर से मुकदमा लड़े; और यह जानते हुए भी कि उसने सावित्री को बेच खाया था, उसे अदालत से छुड़ा लाए। सावित्री बेचारी न घर की रही न घाट की। आज-कल यहीं तो है। अब वह बदमाश डॉक्टर मारा गया, तो सब उसकी मदद को आ रहे हैं। उसने क्या-क्या बदमाशियाँ की थीं, उसे कोई नहीं देखता।"

अठारह

सावित्री उस गाँव की लड़की न थी। उसके प्रति मधुली की भक्ति का आरम्भ पिछले सप्ताह की दुर्घटना के बाद हुआ था। वह विधवा धर्मा की दूर के रिश्ते में भतीजी लगती थी। किसी गुंडे द्वारा भगाकर दिल्ली ले जाई गई थी। गुंडा पकड़ा गया था। सावित्री कई मास किसी महिलाश्रम में रहकर, मुकदमे की गवाही पूरी करके थाने, पुलिस, वकील आदि का एक नया ही अनुभव साथ में ले आई थी। वाग्जाल के ताने-बाने से बुने छिद्रमय भारतीय दंडविधान की छननी में से गुण्डा तो साफ बच निकला था, दंड भोग रही थी सावित्री, क्योंकि पहाड़ी समाज का दंडविधान वैसा छिद्रमय न था। मायके और ससुराल दोनों से निर्वासित हो कर अब वह अपने दूर के नाना हरदत्त काका के घर किसी भाँति दिन काट रही थी। उसके शोक के आघात और पश्चात्ताप की

वेदना ने कांता, गंगा, सीता और मधुली की उस चतुरंग मंडली में एक आत्मनिर्भरता की साँस फूँक दी थी। अब इस मंडली की पाँचों सदस्याएँ एक दूसरे की दीदी-भुली[1] बन पास आकर ग्रामीण समाज से दूर छिटकी जा रही थीं। प्रतिदिन वन में इन पाँचों की गोष्ठियाँ हो रही थीं कि पुलिस के आने पर कैसे सामना करना होगा, प्रत्येक का क्या कर्त्तव्य होगा। इसमें नित्य संशोधन पेश होते थे और फिर एकमत होकर निर्णय किया जाता था।

प्रेमबल्लभ ने अपने मुख पर मुसकराहट का भाव ला कर सच्ची सहानुभूति से कहा, "मैं देखूँगा। मुझे तुम बताओ तो सही, क्या किया था उस बदमाश डाक्टर ने ?"

"मैं क्यों बताऊँ ? तुम नहीं जानते क्या ?"

कुछ रुककर प्रेमबल्लभ ने कातर मुद्रा से कहा, "एक बार तुम्हें भी तो उसने…"

मधुली ने अपनी खुरदरी हथेली से प्रेमबल्लभ का मुँह बन्द कर दिया। टपटप आँसू गिराती हुई वह बोली, "छि ! बचपन की उस बात को तुम अब तक नहीं भूले ?"

मधुली के हाथों को अपने हाथों में लेते हुए प्रेमबल्लभ ने कहा, "यह न सोचो कि मैं उस बात के लिए अकारण ही तुम्हें दोषी समझता हूँ—कदापि नहीं। तुम भागकर मायके गई थीं—ठीक ही तो किया था तुमने। इस बात पर, तुम्हारी सौगन्ध, मैं तुमसे जरा भी नाराज नहीं हूँ।"

दो मिनट चुप रहकर मधुली ने एकाएक कहा, "मैंने तो उससे

---

१. बड़ी और छोटी बहन।

भी बड़ा दोष किया है। उसे सुनकर क्या तुम मुझे क्षमा करोगे ?"

क्षण भर में स्त्री जाति सुलभ सभी संभाव्य अपराधों को सोच कर, अपराध और अपराधी के प्रति अपनी नवीनतम मनोवैज्ञानिक धारणा को मन-ही-मन याद करके प्रेमबल्लभ ने कहा, "क्यों नहीं ! अवश्य क्षमा कर दूँगा।" यद्यपि उसके मन में अब भी धुकधुको लगी थी कि न जाने वह कौन-सा अपराध है।

लेकिन मधुली अपनी शैतानी भरी चमकीली आँखों से उसकी ओर देखकर बोली, "जब बुरूंश[1] फागुन में खिलता है तो प्रशंसकों के हाथ से उस फूल को टूटने से कौन बचा सकता है ! तुम्हें विश्वास है कि मैं अब भी तुषार जैसी स्वच्छ हूँ ?" थोड़ी देर दोनों चुप रहे, फिर उसी ने कहा—"तुम्हारा जीवन अब दूसरा है। तुम अपना संपूर्ण मुझ गंवई गाँव की लड़की में मिला भी कैसे सकते हो !"

प्रशंसकों के हाथ पड़े पुष्प की उस उपमा से प्रेमबल्लभ स्तब्ध रह गया। दीया बुझ जाने पर जैसे कमरे का रंग ही नहीं बदल जाता, उसमें निपट अँधेरा भी छा जाता है, ऐसी ही तत्काल विवर्ण होती प्रेमबल्लभ भी मुद्रा की ओर देखकर मधुली दूसरे ही क्षण बोली, "चुप क्यों हो गए ? मैंने ऐसा-वैसा अपराध नहीं किया। मेरा अपराध सुनोगे तुम ? सुन लो। तुम से न कहूँगी तो किसी पुलिस के सिपाही से थोड़े ही कहूँगी। मैंने ही उस बदमाश डाक्टर शर्मा की हत्या की थी।" इतना कह चुकने पर वह टपटप आँसू बहाने लगी। आँसुओं को रोकने का असफल प्रयत्न करने के बाद उसने

१. विशाल लाल-लाल फूलों वन वृक्ष-रोडोडेंड्रोन।

अपना सिर घुटनों में छिपा लिया और सिसक-सिसककर रोने लगी।

कई क्षण तक कमरे में निस्तब्धता रही। जब छिलुके की लकड़ियाँ चिट-चिट करके बुझने लगीं, तो उन्हें एकत्र कर के प्रेमबल्लभ ने बिना मधुली की ओर देखे अति व्याकुल और परास्त होकर कहा, "क्या तुमने किसी और को भी यह बात कही है?"

"किसी से नहीं," मधुली ने शांति से कहा। उसके असाधारण शांत स्वर से प्रेमबल्लभ ने सोचा कहीं पत्नी ने झूठ-मूठ परिहास करने के लिए उसे चकमा तो नहीं दिया। हाँ, वह बचपन में ऐसे ही विनोदपूर्ण परिहास करके उसे छकाती थी। किन्तु मधुली की उस घोर-गंभीर चितवन और अपने मनोद्वेग पर विजय पाने का कारण था आज दिन में हुई गोष्ठी का निर्णय, जिसमें पाँचों बहुओं ने गाँव से भागकर सरला बेन आश्रम में शरण लेने का निश्चय किया था। अब गाँव समाज को छोड़ देने का निर्णय पक्का हो गया था।

वह बोला, "तुम अब कभी ऐसी बात मुँह से न निकालना। ऐसी बातें गढ़ने से परेशानी में पड़ जाओगी।"

"झूठ नहीं," मधुली ने कहा—"अब तो सारा गाँव जानता है। पहले किसी को मालूम नहीं था। लेकिन कांता को उस घटना के बाद घर आते ही डर के मारे बुखार आ गया। वह भी हत्या के समय मेरे साथ थी। कई दिन तक जब उसका बुखार नहीं उतरा, तो ओझा को झाड़ने के लिए बुलाया गया। ओझा ने जब सुना कि पंचवेणियाँ ताल से लौटने पर ही बुखार आया है, तो उसने कांता का भूत झाड़ते समय एक-एक करके सब बातें उससे कहलवा लीं। बेचारी ने बेहोशी में सब कुछ बता दिया कि कैसे मैंने ठीटा मारा,

कैसे डॉक्टर फिसला, कैसे गंगलोढ[1] के साथ लोट-पोट करता पहाड़ के नीचे लुढ़क गया।"

"तो तुमने नहीं मारा उसे ?" प्रेमबल्लभ ने चैन की साँस ले कर कहा—"यह कहो कि वह अपने-आप फिसलकर मर गया था।"

प्रेमबल्लभ की आँखों में दृष्टि गड़ाकर अविश्वास से मधुली ने कहा, "कहने को तो यह भी कहा जा सकता है कि उसका अन्त ही आ गया था, होनहार थी, वह मर गया। लेकिन ऐसा ही कहकर छुट्टी मिल जाती है क्या ? तुम सब दलबल लेकर वहाँ सुपकोट के मैदान में तंबू ताने क्या बेकार ही बैठने थोड़े आए हो ! हत्या के अपराध में किसी न किसी को पकड़ने के लिए ही तो तुम लोगों को भेजा गया है।"

"उस पुलिस की बात जाने दो। मेरा विश्वास करो," प्रेमबल्लभ ने कहा—"सच बात कहने पर कुछ भी अनिष्ट नहीं हो सकता। व्यर्थ ही अपने को दोषी न मानो। तुमने कोई अपराध नहीं किया।"

यह कह चुकने पर भी प्रेमबल्लभ के मन में एक चुभन-सी पीड़ा करती रही कि कैसे यह विपत्ति टलेगी। वह फिर बोला, "एक बार मुझे फिर उस सारी घटना को बता दो।"

मधुली तो वह सारी घटना कहकर अपने मन का बोझ हलका करने को आतुर थी ही। अब एक सहृदय श्रोता पाकर उसने आद्योपांत फिर सारी घटना का वर्णन कर दिया। कहीं कोई बात नहीं छिपाई।

---

१. गोलमटोल चिकना पत्थर।

सुनकर प्रेमबल्लभ को शांति हुई। उसने मन-ही-मन निश्चय किया कि डॉक्टर शर्मा की मृत्यु को आकस्मिक बताना और सिद्ध करना कठिन न होगा।

मधुली को अपने और निकट समेटते हुए उसने कहा, "मेरे साथ ऊपर चलो। मैं तुम्हारे लिए एक-दो चीजें लाया हूँ।"

"आज नहीं, आज नहीं," मधुली अपने गद्दे पर चिपटते हुए बोली।

"आज क्यों नहीं?" प्रेमबल्लभ ने पूछा—"कल तो तुमसे फिर दिन भर भेंट न हो सकेगी। तुम्हारे लिए मैं क्या लाया हूँ, जरा पहनकर देखो तो।"

"मेरे खुले बाल नहीं देखते?" मधुली ने मानो डरकर कहा—"आज ही तो मैंने सिर धोया है। कल तड़के नहा लूँगी तब पहनना ठीक रहेगा। तुम जाओ, सो जाओ।"

प्रेमबल्लभ ने उसकी मिथ्या बात को सच मान लिया। वह उठता हुआ बोला, "सुबह नहाकर आओ तो मुझे भी जगा देना। कल तुम जंगल भी मत जाना।"

"अच्छा," कहकर मधुली ने अपने कमरे के किवाड़ प्रेमबल्लभ के बाहर जाते ही बंद कर लिए।

दूसरे दिन जब प्रेमबल्लभ उठा तो बाहर धूप निकल आई थी। उसे मधुली ने जगाया न था। पास ही खुली खिड़की पर उसका सूटकेस रखा था। उसने रात को उसे चारपाई के नीचे रखा था। सूटकेस खोलकर उसने देख लिया। उसके लाए दुपट्टा और साड़ी वहाँ न थे। यह मधुली की शैतानी होगी। सोचकर आत्म-संतोष की लहर उसके सारे शरीर में दौड़ गई। थोड़ी ही देर में उसे पता चल

गया कि मधुली आज भी जंगल चली गई। अपनी सहेलियों की गोष्ठी में प्रेमबल्लभ से रात को हुई बात को न बताना मधुली को सह्य न था। उसके इस अवज्ञापूर्ण व्यवहार से भी प्रेमबल्लभ की प्रसन्नता मंद न पड़ी। दोपहर तक वह नई चुन्दरी और नई साड़ी पहने मधुली के लौटने की प्रतीक्षा करता रहा। लेकिन आज वह दोपहर तक भी न लौटी।

विमाता ने उसकी देर से आने की आदत का आज भी प्रेमबल्लभ को बढ़ा-चढ़ाकर दिग्दर्शन करा दिया। प्रेमबल्लभ रात को देर तक जागने के कारण दोपहर को खाने के उपरांत सो गया।

उन्नीस

"चलो !" किसी ने प्रगाढ़ निद्रा से उसे जगा दिया। चार-पाँच व्यक्ति उस कमरे में घबराए हुए खड़े थे। "जल्दी करो !" हरदत्त काका ने उसे झकझोरकर उठाते हुए कहा—"तैयार हो जाओ।"

झटपट आँखें मलता हुआ वह उठ खड़ा हुआ। शेरसिंह घटवार ने उसके चप्पल सामने रख दिए।

प्रेमबल्लभ ने पूछा, "क्या हुआ ? कहाँ जाना है ?"

उसके प्रश्न का किसी ने उत्तर न दिया। बाहर धर्मा खड़ी थी। बोली, "मैं जानती थी पुलिस तक खबर पहुँचने पर ऐसा ही कुछ होगा।"

हरदत्त काका झट बाहर कूदते हुए से बोले, "चलो दौड़कर चलते हैं।"

प्रेमबल्लभ समझ गया कोई दुर्घटना हो गई है। पुलिस शब्द सुनकर ही उसके मस्तिष्क में कोई घूँसा-सा मारने लगा। सब लोग भागते हुए चतरख की चढ़ाई पर दौड़ पड़े। प्रेमबल्लभ उनके पीछे रह गया। इतने दिनों तक परदेस में रहने से पहाड़ की चढ़ाई पर दौड़ने में उसकी साँस फूलने लगी।

उधर जब मधुली ने पति के साथ हुई अपनी बातों का जिक्र अपनी सहेलियों से किया और उन्हें बताया कि अब डरने की कोई बात नहीं, पुलिस उन्हें पकड़ने नहीं, किसी और काम से आई है, तो चारों को उसके भोलेपन पर बड़ा तरस आया। उसकी बात पर विश्वास करना तो दूर रहा, वे और भी आतंकित हो गई।

सावित्री को पुलिस के अधिकारियों के स्वभाव का बड़ा ज्ञान था, उसने कहा—"चिकनी-चुपड़ी बात करनेवाले, औरतों के हितैषी बनने का दंभ भरनेवाले पुलिस के थानेदार जो कुछ न कर डालें वही कम है।"

गंगा ने कहा, "अब तो पुलिस के जासूसों के हाथ से बचना कठिन है। आश्रम में तो क्या, दुनिया के किसी कोने में भी हम छिपें, अब पकड़ी ही जाएँगी।"

मधुली अपनी बात पर अड़ी रही। उसे अपने पति पर पक्का भरोसा था।

उसे ऐसा विचित्र दुराग्रह करते देख सावित्री ने कह डाला, "हाँ, तुमको इकबाली गवाह बनाकर तुम्हारा पति रिहाई जरूर दिला देगा। हमें तो अब फाँसी लगेगी ही।"

यह बात मधुली की कल्पना में आई भी न थी। भला, अब इसे वह कैसे सह लेती! रोकर बोली, "ऐसा कदापि न होगा।

चलो, अब तुम्हारा ही जो निर्णय हो मुझे मंजूर होगा।"

गोष्ठी देर तक होती रही। निर्णय हुआ कि लाल पगड़ी के हाथ पड़कर जान गँवाने से तो अच्छा यही है जो दुखी नारियों ने निश्चय किया है। जो मुक्ति-द्वार शैलवधुओं के लिए युगों से खुला पड़ा है उसी की शरण में क्यों न चला जाए!

पूरी चढ़ाई पार करके वे लोग पंचवेणियाँ ताल की ओर बढ़े। प्रेमबल्लभ भी कुछ देर बाद उनका अनुसरण करता वहाँ पहुँचा। उसके मस्तिष्क में उस समय एक ही विचार काम कर रहा था कि शायद पुलिस के लोगों ने आकर किसी स्त्री को पकड़ने का प्रयत्न किया और हाथापाई में किसी को भयानक चोट आ गई है। सोचा कि कहीं वे मधुली को तो नहीं पकड़ ले गए? तब तो बड़ा अनर्थ हो गया। भला वह सोता क्यों रह गया।

बीस

प्रेमवल्लभ ने देखा कि पंचवेणियाँ ताल में निर्भर का जल उसी भाँति फेनिल हो कर गिर रहा है। पत्थर का वह गहरा कुंड पहले ही की भाँति चतुर्दिक उठी हुई चट्टानों के बीच नील मणि-सा दीप्त है। और वे लाल-लाल वस्तुएँ ? एक, दो, तीन, चार, पाँच—बड़ी-बड़ी मछलियाँ हैं क्या ? वस्तुस्थिति से अवगत होते ही वह धम से वहीं बैठ गया। शेरसिंह बटवार नंगा होकर ताल में कूद गया। उसने उन लाल वस्तुओं को पकड़कर किनारे की ओर खींचा।

मरी हुई मछलियों की भाँति पाँच लड़कियों के शव चट्टान पर उतार दिए गए। उनकी वेणियों के बाल पानी में छितरा कर धुली हुई जड़ों की भाँति चट्टान पर चिपकने लगे। गंगा थी—अब गणित में उसकी वह कुशाग्रता उसके किस काम आ रही थी ? मधुली थी—उसके भोले-भाले मुख पर उस पालतू कुत्ते का-सा

स्वामी भक्ति का विनीत भाव था जिसने अपने मालिक के लिए शिकार पकड़ने में अथक प्रयत्न करके प्राण ही त्याग दिए हों। सावित्री थी---उसके चेहरे पर 'मैंने क्या बिगाड़ा था जो मुझे कहीं शरण न मिली' ऐसा भाव था। सीता और कांता थीं---अनायास मिली इस मुक्ति के आनन्द से उनकी पलकें बन्द थीं। पाँचों की कमरें एक साथ प्रेमबल्लभ की लाई हुई नई साड़ी और दुपट्टे से बँधी हुई थीं।